MPAM-601

संगीत शास्त्र I

एम0पी0ए0 संगीत – तृतीय सेमेस्टर

संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग

मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

MPAM-601

संगीत शास्त्र I

एम0पी0ए0 संगीत – तृतीय सेमेस्टर

संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग

मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
तीनपानी बाईपास रोड, ट्रान्सपोर्ट नगर के पीछे,
हल्द्वानी, जिला नैनीताल, पिनकोड–263139
फोन नं0 : 05946–286000 / 01 / 02
फैक्स नं0 : 05946–264232,
टोल फ्री नं0 : 18001804025
ई–मेल : **info@uou.ac.in**
वेबसाईट : **www.uou.ac.in**

MPAM-601

अध्ययन मण्डल

कुलपति (अध्यक्ष)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रो0 एच0 पी0 शुक्ल(संयोजक)
निदेशक–मानविकी विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ0 विजय कृष्ण (सदस्य)
पूर्व विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग,
डी0एस0बी0 कैम्पस, नैनीताल,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

डॉ0 आशा पाण्डे कृष्ण (सदस्य)
विभागाध्यक्षा, संगीत विभाग,
एच0एन0बी0 गढ़वाल विश्वविद्यालय,
श्रीनगर

डॉ0 मल्लिका बैनर्जी (सदस्य)
संगीत विभाग,
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त
विश्वविद्यालय, दिल्ली

द्विजेश उपाध्याय (सदस्य)
सहायक प्राध्यापक (ए.सी.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन, प्रूफ रिडिंग एवं फार्मेटिंग

प्रदीप कुमार
सहायक प्राध्यापक
संगीत नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

द्विजेश उपाध्याय
सहायक प्राध्यापक (ए.सी.)
संगीत नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

अशोक चन्द्र टम्टा
सहायक प्राध्यापक(ए.सी.)
संगीत नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

जगमोहन परगांई
सहायक प्राध्यापक(ए.सी.)
संगीत नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रकाश चन्द्र आर्य
सहायक प्राध्यापक(ए.सी.)
संगीत नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संपादन

डॉ0 विजय कृष्ण
पूर्व विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग,
डी0एस0बी0 कैम्पस, नैनीताल,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

डॉ0 चन्द्रशेखर तिवारी
वरिष्ठ संगीतज्ञ,
हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ0 रेखा साह
पूर्व विभागाध्यक्षा, संगीत विभाग,
डी0एस0बी0 कैम्पस, नैनीताल,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

द्विजेश उपाध्याय
सहायक प्राध्यापक (ए.सी.) –संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखन

1.	**डॉ0 महेश पाण्डे**	इकाई 1,2,3,4

कापीराइट : @उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
संस्करण : सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति
प्रकाशन वर्ष : जुलाई 2021,
प्रकाशक : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल–263139
ई–मेल : books@uou.ac.in

इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी, चकमुद्रण द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

MPAM-601

एम0पी0ए0 संगीत – तृतीय सेमेस्टर
संगीत शास्त्र I – एम0पी0ए0एम0–601

इकाई	इकाई का नाम	पृष्ठ
इकाई 1	भारतीय एवं पाश्चात्य संगीत के स्वर सप्तक एवं इनका तुलनात्मक अध्ययन।	01–09
इकाई 2	स्वर स्थान एवं आन्दोलन संख्या श्रीनिवास एवं भातखण्डे के अनुसार।	10–25
इकाई 3	आलाप व तान का वर्णन एवं इनके प्रकार।	26–39
इकाई 4	ध्रुपद और ठुमरी का इतिहास, उत्पत्ति, विकास, वर्तमान स्वरुप एवं घराने।	40–56

इकाई 1 – भारतीय एवं पाश्चात्य संगीत के स्वर सप्तक एवं इनका तुलनात्मक अध्ययन

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 भारतीय एवं पाश्चात्य स्वर सप्तक का स्वरुप
1.4 भारतीय एवं पाश्चात्य स्वर सप्तक एवं तुलनात्मक अध्ययन
- 1.4.1 नेचुरल स्केल
- 1.4.2 टेम्पर्ड स्केल
- 1.4.3 पाइथागोरियन स्केल
- 1.4.4 क्रोमेटिक स्केल
- 1.4.5 डायटोनिक स्केल
- 1.4.6 मेजर स्केल
- 1.4.7 माइनर स्केल
- 1.4.8 पेण्टाटानिक स्केल
- 1.4.9 हेक्साटानिक स्केल
- 1.4.10 हेप्टाटानिक स्केल

1.5 सारांश
1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई प्रदर्शन कला–संगीत में स्नातकोत्तर, तृतीय सेमेस्टर (एम0पी0ए0एम0–601) पाठ्यक्रम की पहली इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकते हैं कि संगीत में सप्तक की रचना किस प्रकार हो चुकी है तथा भारतीय सप्तक के लिए प्रारम्भ से किन स्वरों संवादों का आधार लिया गया है। सप्तक के सभी आधारभूत तत्वों को आप समझा सकते हैं।

इस इकाई में भारतीय एवं पाश्चात्य संगीत के स्वर सप्तक एवं इनका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत है। प्राचीन समय से ही स्वर सप्तक का अस्तित्व किसी न किसी रुप में विद्यमान था। उस समय विद्वानों ने 22 संगीतपयोगी ध्वनियों को एक सप्तक में रखा था परन्तु वर्तमान में 12 स्वर ही एक सप्तक के अन्तर्गत सम्बन्धित हैं।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप स्वर सप्तक के विकास क्रम को समझा सकेंगे। साथ ही विभिन्न स्वर सप्तकों में प्रयुक्त स्वरों की स्थिति एवं संख्या को भी समझा सकेंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप स्वर सप्तकों पर विभिन्न स्थान, प्रदेशों के प्रभाव एवं सप्तक सिद्धान्तों को समझा सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आपः–

- बता सकेंगे कि स्वर सप्तक की रचना किन प्रमुख सिद्धांतों के आधार पर की जाती है।
- समझा सकेंगे कि वर्तमान में भारत एवं पाश्चात्य देशों में विभिन्न स्वर सप्तकों का प्रचलन है।
- बता सकेंगे कि भारतीय एवं पाश्चात्य स्वर सप्तकों में परस्पर क्या सम्बन्ध है तथा इनका तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे।
- समझा सकेंगे कि प्रमुख स्वर सप्तकों में किन का प्रयोग वर्तमान में अधिकता से हो रहा है तथा उसमें कौन–सी विशेषताएँ हैं?

1.3 भारतीय एवं पाश्चात्य स्वर सप्तक का स्वरुप

भारतीय संगीत में सप्तक से भाव सात स्वरों का क्रमिक समूह है। पाश्चात्य संगीत विद्वान् सप्तक की बजाय ऑक्टेव शब्द का प्रयोग करते हैं। ऑक्टेव आठ स्वरों का सूचक है। मध्य सप्तक से लेकर तार सप्तक तक एक सप्तक मानते हैं। दूसरे शब्दों में सा रे ग म प ध नि सां आठ स्वरों के क्रमिक समूह को ऑक्टेव कहते हैं। यहां पर विचार योग्य बात यह है कि भारतीय स्वर सप्तक में सा रे ग म प ध नि शुद्ध स्वरों के अलावा पाँच विकृत (रे ग म ध नि) स्वर भी होते हैं।

इस प्रकार एक सप्तक में एक स्वर के दो रुपों को मिलाकर 7 शुद्ध, 5 विकृत, 12 स्वर सप्तक संगीत–प्रणाली का मूल आधार है। संगीत का विकास चाहे पाश्चात्य हो या भारतीय, स्वर सप्तक पर ही आधारित है। गायन के आरंभ में पहले केवल तीन स्वर ही होते थे। उनको आर्चिक, गाथिक और सामिक कहा जाता था। बाद में स्वर संवाद के आधार पर सप्तक पूरा हुआ।

इनको षड्ज, ऋषभ, गंधार मध्यम पंचम धैवत, निषाद कहा गया। संक्षेप में इनको सा, रे, ग, म, प, ध, नि कहा जाता है। सा से लेकर नि तक एक सप्तक बनता है। दूसरा सप्तक फिर से

षड्ज शुरु होता है। इस प्रकार कई सप्तक बन सकते हैं। अंतर केवल आवाज की ऊँचाई–नीचाई के आधार पर मुख्य तीन स्थान माने गए।

पाश्चात्य संगीत में स्वर–सप्तक के लिए स्टाफ नोटेशन पद्धति का प्रयोग किया जाता है। इस पद्धति में प्रारंभ में किसी एक लकीर को मध्य–सप्तक का सा मानना एवं उस पर सा के लिए एक विशेष प्रकार का अण्डाकार चिन्ह बना दिया जाता है। पाश्चात्य संगीत में विद्वानों में 11 रेखाओं का एक समूह बनाया, जिसमें सप्तक के सभी स्वरों को सरलता से दर्शाया जा सके। इस 11 रेखाओं के समूह को ग्रेट स्टाफ के नाम से सम्बोधित किया गया। इस प्रकार अतिमन्द्र सप्तक के मध्यम से तार–सप्तक के पंचम तक के स्वरों को सरलता से दर्शानें की सुविधा हो गई, परन्तु संगीत रचना में किसी स्वर रचना के लिए यह आवश्यक नहीं होता कि सभी सप्तकों के स्वरों का उपयोग हो। फिर छोटी रचना को बनाने में असुविधा के फलस्वरुप इसे दो भागों में विभक्त कर दिया गया, अर्थात् ऊपर की पांच रेखाओं को मध्य सा से ऊपर के स्वरों के लिए एवं नीचे की पांच रेखाओं को मध्य से नीचे के स्वरों के लिए, एवं छठी रेखा को दोनों भागों में सम्मिलित कर लिया गया।

स्वर सप्तक का विकास सम्भवतः दो आधार पर हुआ होगा। एक तो जो मनुष्य समुद्र के किनारे रहते थे, उन्होंने छोटे और बड़े शाखों की ध्वनियों के आधार पर एवं जो मनुष्य जंग में रहते थे उन्होंने छोटे–बड़े बाँसों की ध्वनियों के आधार पर सप्तक बनाई होगी। सम्भवतः प्रारम्भ में लोगों ने अनुभव किया कि दो नाद ऊँचे एवं नीचे होने पर भी एक तरह के सुनाई पड़ते हैं। ये दो नाद सम्भवतः मध्य सा एवं तार सा रहे होंगे फिर पुनः दो नाद इन दो नादों के बीच के नाद ज्ञात हुए जो इनसे मधुर सम्बन्ध रखते थे। ये नाद सम्भवतः मध्यम एवं पंचम थे। इस प्रकार अन्य स्वरों की भी खोज हुई एवं कुल मिलाकर सात स्वरों की सप्तक की रचना हुई। वर्तमान समय में भारत तथा पाश्चात्य देशों में विभिन्न नामों से स्वर सप्तक जो कि प्रचलित हैं सम्बोधित की जाती हैं। वे संख्या में 10 हैं।

1.4 भारतीय एवं पाश्चात्य स्वर सप्तक का तुलनात्मक अध्ययन

1.4.1 नेचुरल स्केल – विभिन्न देशों में रहने वाले मनुष्यों की रुचि के आधार पर स्वर सप्तकों का निर्माण उनकी रुचि के अनुरुप हुआ जिसके कारण इसका नाम नेचुरल स्केल पड़ा। विभिन्न देशों के जनरुचि के आधार पर निर्माण होने के कारण इसके स्वर–स्थान भी एक–दूसरे से कुछ पृथक्–पृथक् स्थान पर हो गये। विशेष रुप से पूर्वी एवं पश्चिमी देशों के स्वर सप्तक एक–दूसरे से काफी असमान हो गये। यदि भारतीय एवं पाश्चात्य नेचुरल स्केल के स्वर सप्तकों के स्वर–स्थानों को तुलनात्मक रुप से देखें तो वे निम्न क्रम में मिलते हैं:

पाश्चात्य स्वर सप्तक

सा	रे	रे	ग	ग	म
240	256	270	288	300	320

म॑	प	<u>ध</u>	ध	<u>नी</u>	नी	सां
337 ½	360	384	400	432	450	480

भारतीय स्वर सप्तक

सा	<u>रे</u>	रे	<u>ग</u>	ग	म	म॑
240	254 2/2	270	288	301 17/43	320	338 14/17

प	<u>ध</u>	ध	<u>नी</u>	नी	सां
360	381 3/17	405	432	454 4/83	480

उपर्युक्त स्वरों की आन्दोलन संख्याओं के अनुसार सा, रे, ग म, प, नी सां, स्वरों की आन्दोलन संख्या भारतीय एवं पाश्चात्य संगीतज्ञों द्वारा समान मानी गयी है तथा पाश्चात्य कोमल रे ध भारतीय कोमल रे घ से ऊँचे हैं तथा पाश्चात्य ग, म, ध, नी स्वर भारतीय ग, म, ध, नी स्वर से नीचे हैं। अतः जो संगीत रचना सा रे ग म प नी सां इन स्वरों पर की जायेगी वह दोनों देशों के मनुष्यों को सुनने में प्रिय लगेगी। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हमारे काफी थाट में धैवत वर्ज्य करके जो संगीत रचना की जायेगी वह भारतीय होने पर भी पाश्चात्य देश के लोगों को मधुर लगेगी।

<u>1.4.2 टेम्पर्ड स्केल</u> – पाश्चात्य देशों में आरकेस्ट्रा तथा समूह गायन का प्रचार अधिक होने के कारण यह अनुभव हुआ कि नेचुरल स्केल पर की गयी स्वर रचना कभी–कभी बड़ी अप्रिय लगती है तथा उसकी रचना में कठिनाई भी होती है। अतः कुछ संगीतज्ञों ने यह निश्चित किया कि एक ऐसी स्वर सप्तक बनायी जाये जिसके सभी स्वर एक–दूसरे से समान दूरी पर हों एवं हारमोनी इत्यादि की रचना में सुविधा हो। अतः पाश्चात्य संगीतज्ञों ने निम्न आधार पर टेम्पर्ड स्केल की रचना की।

यदि सा की आन्दोलन सख्या 240 मान लें तो उस स्वर सप्तक के बारहों स्वरों की अ0स0 इस प्रकार मिलती है–

सा	<u>रे</u>	रे	<u>ग</u>	ग	म
240	254.27	269.39	285.41	302.38	320.36

।						
म	प	ध	ध	नी	नी	सां
339.41	359.59	380.96	403.63	427.63	453.06	480

इन स्वरों की अ0स0 के अनुसार सभी स्वर भारतीय एवं पाश्चात्य नेचुरल स्केल से भिन्न हैं। अतः टेम्पर्ड स्केल के स्वर भारतीय एवं पाश्चात्य संगीतज्ञों को बेसुरे लगेंगे।

टेम्पर्ड स्केल के स्वरों को सावर्ट के आधार पर भी इस प्रकार दर्शाया जा सकता है। पाश्चात्य संगीत सावर्ट पूरी एक स्वर सप्तक को 300 बराबर भागों में बँटा हुआ मानते हैं। अतः हम एक सप्तक में 12 स्वरों को बराबर–बराबर दूरी पर स्थापित करें तो प्रत्येक स्वर की दूरी 25 सावर्ट होगी। जैसे :–

						।
सा	रे	रे	ग	ग	म	म
0	25	50	75	100	125	150

प	ध	ध	नी	नी	सां
175	200	225	250	275	300

1.4.3 पाइथागोरियन स्केल – पाइथागोरस ने अपने स्वर सप्तक में यह सिद्ध किया कि यदि किसी तार को दो भाग में किया जाय तो उन दो भागों का जितना सरल अनुपात होगा, उन स्वरों की ध्वनियों में उतनी ही मधुरता होगी। इस आधार पर पाइथागोरस ने दो नियमों को बताया–(1) **एक सप्तक का सिद्धान्त (2) पाँचवें स्वर का सिद्धांत।** एक सप्तक के सिद्धांत के आधार पर तार को 1:2 के अनुसार विभाजित किया। इस प्रकार पहले भाग से जो स्वर मिलता है दूसरे भाग से उसका दुगुना स्वर अथवा आठवाँ स्वर मिलेगा। इसे पाइथागोरस ने एक सप्तक का सिद्धांत कहा। दूसरे सिद्धांत पाँचवें स्वर का सिद्धांत के आधार पर तार को 2:3 के अनुसार विभाजित किया। इस बार पहले भाग से जो स्वर मिला दूसरे भाग द्वारा उसका पाँचवाँ स्वर मिला। इस प्रकार यदि सा की अ0स0 240 मान लें तो इन सिद्धांतों का प्रयोग किया जा सकता है।

सा	**रे**	**ग**	**म**	**प**	**ध**	**नी**
240	270	303 3/4	320	360	405	455 5/8
सां	**रे**					
480	540					

240	अ0स0	का	आठवाँ स्वर	$240 \times 2 = 480$
240	अ0स0	का	पाँचवाँ स्वर	$120 \times 3 = 360$
240	अ0स0	का	पाँचवाँ स्वर	$180 \times 3 = 540$

पाइथागोरस के स्वर स्थान सावर्ट के अनुसार इस प्रकार दर्शाये जा सकते हैं:

सा	रे	ग	म	प	ध	नी	सां
0	51.0	102.0	124.5	175.5	226.5	277.5	300

नोट – ऽ का चिन्ह् सेमीटोन है एवं ा का चिन्ह टोन दिग्दर्शित करता है।

1.4.4 क्रोमेटिक स्केल – जब स्वर सप्तक में सभी स्वरों का स्थान क्रमानुसार हो तो उसे क्रोमेटिक स्केल कहते हैं। इस प्रकार के सप्तक के स्वरों की निकटतम दूरी एक सेमीटोन मानी जाती है। जैसे–

।

सा रे रे ग ग म म प ध ध नी नी सां

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

क्रोमेटिक स्केल को कुछ लोग कलरफुल स्केल अर्थात् रंगीन स्वर सप्तक भी कहते हैं।

1.4.5 डायटोनिक स्केल – इस सप्तक के सम्बन्ध में दो मत हैं–

(अ) जो स्वर सप्तक दो प्रकार के टोन से बनता है (अर्थात् टोन एवं सेमीटोन) उसे डायटोनिक स्केल कहते हैं।

(ब) जिस स्वर सप्तक में दो सेमीटोन आते हैं उसे डायटोनिक स्केल कहा जाता है। जैसे–

सा ा रे ा ग ऽ म ा प ा ध ा नी ऽ सां

यदि अ0स0 के आधार पर देखा जाय तो डायटोनिक स्केल के स्वरों में निम्न अनुपात मिलता है।

सा	रे	ग	म	प	ध	नी	सां
240	270	300	320	360	405	450	480
8:9	9:10	15:16	8:9	8:9	9:10	15:16	

अर्थात् डायटोनिक स्वर सप्तक के ऐसे स्वर जिनका अनुपात 8:9 है, उन्हें चार श्रुति का तथा जिनमें 9:10 का अनुपात है उन्हें तीन श्रुति का तथा जिनमें 15:16 का अनुपात है उन्हें दो श्रुति का कह सकते हैं। अतः जिस स्वर सप्तक की रचना निम्नलिखित श्रुतियों के क्रम में हो उसे डायटोनिक स्केल कहेंगे।

4 4 3 2 4 3 2

सा । रे । ग । म । प । ध । नी । सां

1.4.6 मेजर स्केल – यह स्वर सप्तक सात स्वरों की होती है एवं लगभग शुद्ध स्वरों की सप्तक के समान ही होती है। यदि सप्तक के किसी भी स्वर को 'सा' मान लिया जाय तथा शुद्ध स्वर सप्तक की रचना की जाय तो वह मेजर स्केल कहलायेगी। ऐसी सप्तक की रचना के लिए सप्तक के स्वर इस क्रम में होना आवश्यक है:–

सा	रे	ग	म	प	ध	नी	सां
।	।	S	।	।	।	S	

अतः हम यदि नेचुरल स्केल के किसी भी स्वर को सा मान कर शुद्ध स्वर सप्तक की रचना करें तो उसे मेजर स्केल कहेंगे। एक सप्तक में बारह मेजर स्केल बन सकते हैं, जो आपस में एक–दूसरे से भिन्न होंगे। मेजर स्केल की रचना T T S T T T S के आधार पर ही की जायेगी। जैसे यदि कोमल ग को सा मान कर स्वर सप्तक बनायी जाय तो इस प्रकार बनेगी।

सा	रे	रे	ग	ग	म	म	प	ध	ध	नी	नी	सां	रे	रे	ग
			T		T		S		T		T	T		S	
			सा		रे		ग		म		प	ध		नी	सां

1.4.7 माइनर स्केल – यह दो प्रकार की होती है:

(अ) हारमोनिक माइनर स्केल (ब) मेलाडिक माइनर स्केल

(अ) हारमोनिक माइनर स्केल – जब किसी स्वर सप्तक का आरोह एवं अवरोह निम्न प्रकार होता है तो उसे हारमोनिक माइनर स्केल कहेंगे। जैसे:–

सा	रे	ग	म	प	ध	नी	सां
T	S	T	T	S	T + S	S	

(ब) मेलाडिक माइनर स्केल – जब किसी स्वर सप्तक के आरोह तथा अवरोह में अन्तर निम्न ढंग से होता है तो उसे मेलाडिक माइनर स्केल कहेंगे:–

आरोह

सा	रे	ग	म	प	ध	नी	सां
।	S	।	।	।	।	S	

अवरोह

सां	नी	ध	प	म	ग	रे	सा
।	।	S	।	।	S	।	

1.4.8 पेण्टाटानिक स्केल – पाँच स्वरों के सप्तक को पेण्टाटानिक स्केल कहते हैं। जैसे भारतीय संगीत में औड़व जाति के राग होते हैं।

1.4.9 हेक्साटानिक स्केल – जो स्वर सप्तक छह स्वरों की होती है उसे हेक्साटानिक स्केल कहते हैं। जैसे भारतीय संगीत में षाड़व जाति के राग।

1.4.10 हेप्टाटानिक स्केल – जो स्वर सप्तक सात स्वरों की होती है, उसे हेप्टाटानिक स्केल कहते हैं। जैसे भारतीय संगीत में सम्पूर्ण जाति के राग।

अभ्यास प्रश्न

1. रिक्त स्थान की पूर्तिः–

(क) पेण्टाटानिक स्केल भारतीय संगीत के ..... जाति के रागों के समान है।
(ख) पाश्चात्य एवं भारतीय स्वर सप्तक में मध्यम की आंदोलन संख्या ..... है।
(ग) स्वर सप्तक में सभी स्वरों का स्थान क्रमानुसार हो तो उसे ..... स्केल कहते हैं।
(घ) माइनर स्केल के दो प्रकार मेलाडिक एवं ..... माइनर स्केल होते हैं।

2. सत्य/असत्य बताइयेः–

(क) सप्तक के अन्तर्गत 12 स्वर सप्तक संगीत प्रणाली का मूल आधार हैं।
(ख) स्वाभाविक स्वर सप्तक का निर्माण जनरुचि के अनुरुप हुआ होगा।
(ग) भारतीय एवं पाश्चात्य स्वर सप्तक में सा की आन्दोलन संख्या 280 है।
(घ) मेजर स्केल सप्तक में आठ स्वरों का प्रयोग होता है।

3. लघु उत्तरीय प्रश्नः

(क) स्वर सप्तक का विकास किस प्रकार हुआ? संक्षेप में बताइये।
(ख) नेचुरल स्केल का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
(ग) भारतीय संगीत में वर्तमान में सप्तक का क्या स्वरुप है? उल्लेख कीजिए।

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान चुके हैं कि संगीत में स्वर सप्तक का विकास किन चरणों में हुआ है तथा वर्तमान में किन महत्वपूर्ण स्वर सप्तकों का चलन किन पद्धतियों में हो रहा है। स्वर संगीत का मुख्य तत्व है तथा इन्हीं स्वरों के एक निश्चित समूह से सप्तक का निर्माण होता है। विभिन्न देशों में संगीत के प्रभाव एवं संगीत की रुचि के अनुसार स्वर सप्तकों का निर्माण उनके अनुरुप होता है। कहीं स्वर क्रमानुसार होते हैं तो कहीं विभिन्न भागों में, श्रुतियों के क्रम में, कहीं आरोह–अवरोह मे अन्तर तथा कहीं स्वरों की संख्या में विभिन्नता के आधार पर स्वर सप्तकों की रचना की गई है। स्वर सप्तक का विकास संभवतः नाद की ऊँचाई निचाई के आधार पर हुई होगी। जब मनुष्य ने यह अनुभव किया होगा कि ध्वनियाँ ऊँची–नीची है उसी आधार पर सर्वप्रथम 2–3 स्वरों के बीच के अन्तर को तथा बाद में अनेक स्वरों के ऊँचे एवं नीचे के अन्तर को देखते हुए सात स्वरों का समूह निर्माण हुआ तथा जिसे स्वर सप्तक का नाम दिया गया।

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. रिक्त स्थान की पूर्तिः–

(क) पेण्टाटानिक स्केल भारतीय संगीत के ....औडव..... जाति के रागों के समान है।

(ख) पाश्चात्य एवं भारतीय स्वर सप्तक में मध्यम की आंदोलन संख्या .....320..... है।

(ग) स्वर सप्तक में सभी स्वरों का स्थान क्रमानुसार हो तो उसे ....क्रोमेटिक..... स्केल कहते हैं।

(घ) माइनर स्केल के दो प्रकार मेलाडिक एवं ....हारमोनिक.... माइनर स्केल होते हैं।

2. सत्य/असत्य बताइयेः–

(क) सप्तक के अन्तर्गत 12 स्वर सप्तक संगीत प्रणाली का मूल आधार हैं। (सत्य)

(ख) स्वाभाविक स्वर सप्तक का निर्माण जनरुचि के अनुरुप हुआ होगा। (सत्य)

(ग) भारतीय एवं पाश्चात्य स्वर सप्तक में सा की आन्दोलन संख्या 280 है। (असत्य)

(घ) मेजर स्केल सप्तक में आठ स्वरों का प्रयोग होता है। (असत्य)

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कौर, डॉ0 भगवन्त, (2002), *परम्परागत हिन्दुस्तानी सैद्धान्तिक संगीत*, कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

2. परांजपे, डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर, (1972), *संगीत बोध*, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।

3. गर्ग, लक्ष्मी नारायण, (1997), *संगीत विशारद*, संगीत कार्यालय, हाथरस

4. गोवर्धन, शान्ति, (1995), *संगीत शास्त्र दर्पण भाग–2*, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

1.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. परांजपे, डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर, (1969), *भारतीय संगीत का इतिहास*, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

2. श्रीवास्तव, प्रो0 हरीशचन्द्र, *राग परिचय भाग 1 तथा 2*, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

(क) स्वर सप्तक की व्याख्या करते हुए इसके विविध प्रकारों का वर्णन कीजिए।

(ख) भारतीय एवं पाश्चात्य स्वर सप्तकों का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।

इकाई 2 – स्वर स्थान एवं आन्दोलन संख्या श्रीनिवास एवं भातखण्डे के अनुसार

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 मध्यकालीन स्वरों की वीणा के तार पर स्थापना
2.3.1 वीणा के तार पर पं0 श्रीनिवास के स्वर स्थान
2.4 भातखण्डे के आधुनिक स्वरों की वीणा के तार पर स्थापना
2.5 वीणा के तार की लम्बाई पर स्वरों की स्थापना में पं0 श्रीनिवास तथा मंज्जरीकार की तुलना
2.6 स्वरों की आंदोलन संख्या
2.6.1 आन्दोलन संख्या से तार की लम्बाई तथा तार की लम्बाई से स्वरों की आन्दोलन संख्या को निकालना
2.6.2 पं0 श्रीनिवास, पं0 भातखण्डे तथा पाश्चात्य स्वरों की आन्दोलन संख्या
2.7 सारांश
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई प्रदर्शन कला–संगीत में स्नातकोत्तर, तृतीय सेमेस्टर (एम0पी0ए0एम0–201) पाठ्यक्रम की दूसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकते हैं कि संगीत में स्वरों की संख्या, स्थिति एवं प्रकारों का प्राचीन से आधुनिक समय तक क्या स्वरुप रहा है। संगीत में 'स्वर' की परम्परा या स्थान प्राचीन काल से किसी न किसी रुप में विद्यमान है। प्रगैतिहासिक काल से आज तक 'स्वर' के सम्बन्ध में विभिन्न प्राचीन संगीतज्ञों एवं ग्रंथकारों ने चर्चा की है।

प्रस्तुत इकाई में संगीत के मूल तत्व 'स्वर' की स्थिति एवं वीणा के तार पर उसके स्थान तथा आंदोलन संख्या के आधार पर स्वरों की स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन करते हुए पं0 श्रीनिवास एवं पं0 भातखण्डे जैसे विद्वान ग्रंथकारों के मत को बताया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप तत्कालीन शुद्ध एवं विकृत स्वरों की स्थापना एवं इनकी स्थिति को समझ सकेंगे। स्वर की उत्पत्ति से सम्बन्धित विभिन्न तथ्यों को समझ सकेंगे साथ ही मध्यकालीन ग्रंथकार व श्रीनिवास तथा आधुनिककालीन पं0 विष्णु नारायण भातखंडे के द्वारा स्वरों की स्थापना एवं उनके आन्दोलन संख्या से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों पर तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

- बता सकेंगे कि भारतीय संगीत का मूल आधार स्वर है एवं मध्यकाल से आधुनिक काल तक स्वर को स्थापित करने की क्या प्रणाली रही है।
- समझा सकेंगे कि स्वर की स्थिति तत्कालीन ग्रंथकारों के साथ–साथ अन्य उनके समकालीन ग्रंथकारों के क्या मत हैं।
- बता सकेंगे कि मानव द्वारा प्रारम्भ में स्वर अविकसित अवस्था में थे तथा जो हम वर्तमान में स्वरों को प्रयुक्त करते हैं उसका श्रृंखलाबद्ध इतिहास है।
- समझा सकेंगे कि शुद्ध, विकृत स्वरों की स्थिति का परस्पर सम्बन्ध क्या है तथा सप्तक में 22 श्रुतियों मं इनकी स्थापना का मुख्य आधार क्या रहा है।

2.3 मध्यकालीन स्वरों की वीणा के तार पर स्थापना

वीणा के तार पर विभिन्न नापों से सप्तक के शुद्ध तथा विकृत स्वरों की स्थापना केवल मध्यकालीन और आधुनिक ग्रन्थकारों ने की। प्राचीनकाल में इस साधन का आविष्कार नहीं हो सका था। प्राचीनकाल में तो ग्रन्थकार अपनी श्रुतियों को समान मानते थे और इसलिए श्रुतियों द्वारा वे अपने स्वरों की स्थापना करते थे। परन्तु मध्यकाल और आधुनिक काल के ग्रन्थकार श्रुतियों को असमान मानते हैं और इसलिए श्रुतियों के आधार पर स्वरों की स्थापना न करके वीणा के तार पर भिन्न–भिन्न नापों से करते हैं।

वीणा के तार की लम्बाई पर सबसे पहले स्वरों की स्थापना मध्यकालीन ग्रन्थकार पं0 अहोबल ने अपनी पुस्तक ''संगीत पारिजात'' में की। इन्हीं का अनुकरण बाद में अन्य ग्रन्थकारों ने किया। पं0 श्रीनिवास

मध्यकालीन ग्रन्थकारों के प्रतिनिधि माने जाते हैं और इसलिए यदि वीणा के तार पर उनके स्वरों की स्थापना समझ ली जाय तो अन्य सभी मध्यकालीन ग्रन्थकारों की स्थापना समझी जा सकती है। इसके पहले कि हम श्रीनिवास के स्वरों की स्थापना वीणा के तार पर भिन्न–भिन्न नापों से समझें, हमको यह जानना आवश्यक है कि श्रीनिवास अन्य मध्यकालीन ग्रन्थकारों की तरह अपना शुद्ध थाट आजकल के काफी थाट के समान मानते थे अर्थात् उनके शुद्ध थाट में गान्धार तथा निषाद कोमल प्रयोग किये जाते थे।

2.3.1 वीणा के तार पर पं0 श्रीनिवास के स्वर स्थान – मध्यकालीन ग्रन्थकारों में ''वीणा के तार पर स्वरों की स्थापना'' का सबसे स्पष्ट वर्णन हमको श्रीनिवास के ''राग–तत्वविबोध'' नामक ग्रन्थ में मिलता है, जो 18वीं शताब्दी में लिखा गया। नीचे श्रीनिवास के स्वरों को वीणा के तार पर भिन्न–भिन्न नापों से समझाया जाता है।

श्रीनिवास ने अन्य ग्रन्थकारों की तरह अपनी वीणा के तार की लम्बाई (घुड़च से लेकर अटी तक) 36 इंच माना है। धुड़च जिसको 'पूर्व–मेरु भी कहते हैं, तूम्बे की ओर होता है तथा उस पर तार रखे जाते हैं। दूसरी ओर खूटियों के पास तारगहन होता है जिस पर तार सधे रहते हैं तथा जिसके छिद्रों से होकर तार खूँटियों में लपेटे जाते हैं। तारगहन को ही 'अटी' अथवा 'अन्त्य मेरु' कहते हैं। आगे हम अटी या अन्त्य मेरु को केवल 'मेरु' के नाम से तथा घुड़च या पूर्व–मेरु को केवल घुड़च के नाम से सम्बोधित करेंगे।

अब हमको यह मालूम होना चाहिए कि वीणा के तार को जिसकी लम्बाई घुड़च के मेरु (अटी) तक 36 इंच है, छेड़ने से मध्य सप्तक का षड्ज उत्पन्न होता है। तार की लम्बाई का चित्र नीचे दिया जाता है।

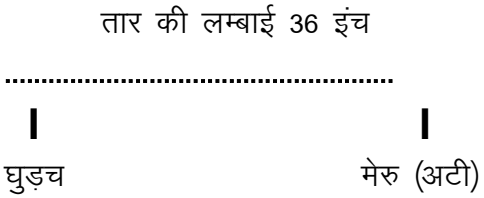

आगे के जो स्वर इस तार पर स्थापित किये जायेंगे उनकी दूरी घुड़च से नापी जायेगी, क्योंकि मध्य–षड्ज की दूरी 36 इंच घुड़च से मेरु (अटी) तक मानी जाती है।

तार षड्ज – घुड़च और मेरु के बीचों–बीच तार षड्ज की स्थापना होती है अर्थात् तार की लम्बाई 36 इंच और इसके बीच में यानी घुड़च से 18 इंच पर तार षड्ज हुआ। अब तार–षड्ज और मेरु (अटी) के बीच में ही मध्य–सप्तक के अन्य स्वरों की स्थापना विभिन्न नापों से की जायेगी। इसका चित्र इस प्रकार होगाः–

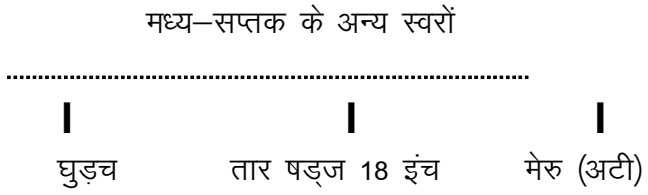

मध्यम – श्रीनिवास मध्यम स्वर की स्थापना तार षड्ज और मेरु के बीच में करते हैं। तार 'सा' और मेरु के तार की लम्बाई 18 इंच है। इसलिए मध्यम स्वर जो तार 'सा' से 9 इंच की दूरी पर है घुड़च से तार 'सा' 18 इंच + 9 इंच = 27 इंच पर हुआ।

पंचम – मेरु और तार 'सा' की लम्बाई को तीन बराबर भागों में विभाजित करने पर मेरु से दूसरे भाग पर तार 'सा' से पहले भाग पर पंचम स्वर की स्थापना होती है। मेरु से तार 'सा' के तार की लम्बाई 18 इंच है। इनके तीन भाग करने पर एक भाग 6 का हुआ। इसलिए पंचम, जो तार 'सा' से 6 इंच पर है, तार 'सा' 18 इंच + 6 इंच = 24 इंच पर हुआ।

गंन्धार – गंन्धार स्वर की स्थापना मेरु और पंचम स्वर के बीच में की गयी है। मेरु से पंचम स्वर के तार की लम्बाई कुल 12 इंच है, इसलिए गान्धार स्वर पंचम से 6 इंच की दूरी पर हुआ अर्थात् घुड़च से पंचम 24 इंच + 6 इंच = 30 इंच पर है।

ऋषभ – मेरु और पंचम स्वर के तार की लम्बाई को, जो 12 इंच है, तीन बराबर भागों में विभाजित करते हैं। अब ऋषभ स्वर मेरु से पहले भागों पर तथा पंचम से दूसरे भाग पर स्थापित होता है। 12 इंच के तीन भाग करने पर एक भाग 4 इंच का हुआ। अब ऋषभ स्वर घुड़च से पंचम 24''+ 8''= 32'' पर हुआ।

धैवत – धैवत स्वर की स्थापना श्रीनिवास ने षड्ज–पंचम भाव से की है। षड्ज तथा पंचम का गुणान्तर 3/2 है यानी 'सा' से 'प' 1 1/2 (डेढ़ गुना) ऊँचा है। षड्ज–पंचम भाव की जोड़ियाँ सा प, रे ध, ग नि, म सां हैं। इसलिए ऋषभ से धैवत भी 3/2 गुना ऊँचा है। अब हमको यदि ऋषभ स्वर की लम्बाई मालूम है तो हम धैवत स्वर की जो ऋषभ से 3/2 गुना है, लम्बाई निकाल सकते हैं। क्योंकि ऋषभ 32 इंच पर है इसलिए धैवत से 32÷3/2= 32×2/3 या 64/3= 21 1/3 इंच पर हुआ।

निषाद – निषाद स्वर की स्थापना के लिए श्रीनिवास ने पंचम से तार 'सा' तक के तार की लम्बाई को तीन बराबर भागों में बाँटा है और पंचम से दूसरे भाग तथा तार 'सा' से पहले भाग पर निषाद स्वर की स्थापना की है। पंचम और तार षड्ज में अन्तर 24''–18''= 6'' है। अब इन 6 इंचों को तीन भागों में बाँटने से एक भाग 2'' का हुआ। निषाद स्वर तार षड्ज से 2'' पर है अर्थात् धुड़च से तार 'सा' 18''+2''= 20 इंचों पर हुआ।

इसके अतिरिक्त पण्डित श्रीनिवास ने सप्तक के पाँच विकृत स्वरों की स्थापना वीणा के तार की लम्बाई पर इस पर की है:–

कोमल ऋषभ – मेरु और शुद्ध ऋषभ के तार की लम्बाई को तीन बराबर भागों में बाँट कर मेरु से दूसरे भाग पर शुद्ध ऋषभ तथा पहले भाग पर कोमल ऋषभ की स्थापना की गयी है। मेरु से शुद्ध ऋषभ की दूरी 4'' है। इसके तीन भाग करने पर एक भाग 4/3'' दूर हुआ। इसलिए कोमल ऋषभ जो शुद्ध ऋषभ से 4/3' दूर है धुड़च से शुद्ध 'रे' 32''+ 4/3त्र 33 1/3 पर हुआ है।

कोमल धैवत – कोमल धैवत की स्थापना पं0 श्रीनिवास ने शुद्ध धैवत की तरह षड्ज–पंचम भाव से की है। अर्थात् कोमल ऋषभ से 3/2 लम्बाई पर कोमल धैवत है। कोमल ऋषभ से 33 1/3 इंच यानी 100/3'' पर है इसलिए कोमल धैवत घुड़च से 110/3 ÷ 3/2 100/3 ×2/3 × 200/9= 22 2/9'' पर हुआ।

तीव्र गान्धार – मध्यकालीन ग्रन्थकार आधुनिक कोमल गान्धार को शुद्ध गान्धार मानते थे, क्योंकि उनका थाट आधुनिक थाट के समान था। इसलिए आधुनिक शुद्ध गान्धार (तीव्र) उनके समय में विकृत स्वर माना जाता था।

तीव्र गान्धार की स्थापना मेरु और धैवत के बीच में करते थे। धैवत और मेरु की बीच की लम्बाई 36– 21 1/3 = 14 2/3 या 44/3''। इसके बीच में 44/3÷2 = 22/3 इंच अर्थात् तीव्र गान्धार धैवत स्वर से 22/3 या 7 1/3'' पर था, इसलिए घुड़च से तीव्र गान्धार 21 1/3+ 7 1/3= 18 2/3 इंच पर हुआ।

तीव्र निषाद – जिस प्रकार तीव्र गान्धार मध्यकाल में विकृत स्वर माना जाता था उसी प्रकार तीव्र निषाद भी मध्यकाल में विकृत स्वर माना जाता था।

इस स्वर की स्थापना श्रीनिवास ने धैवत और तार 'सा' की लम्बाई को तीन बराबर भागों में बाँटकर धैवत से दूसरे भाग पर तथा तार 'सा' से पहले भाग पर करते है। धैवत और तार 'सा' की लम्बाई 21 1/3–18 = 3 1/7 या 10/3'' है। अब इसके तीन भाग करने पर एक भाग 10/3÷ 3 =10/9 इंच हुआ। इसलिए तीव्र निषाद जो तार 'सा' से 10/9 या 1 1/9 पर है धुड़च के तार 'सा' 18 + 1 1/9 इंच पर होगा।

तीव्रतर मध्यम – श्रीनिवास ने इस स्वर की स्थापना, तीव्र गान्धार और तार षड्ज की लम्बाई को तीन बराबर भागों में बाँटकर तीव्र गान्धार से पहले भाग पर तथा तार षड्ज से दूसरे भाग पर करते हैं। तीव्र गान्धार और तार षड्ज की लम्बाई 28 2/3–18 = 10 2/3 या 32/3 इंच है। इस लम्बाई के तीन भाग करने पर एक भाग 32/3×3 = 32/9 इंच का होगा। इसलिए तीव्रतर मध्यम जो तार षड्ज से दूसरे भाग यानी 32/9 + 32/9 = 64/9 इंच पर है धुड़च के तार षड्ज 18+7 1/2 = 25 1/9 इंच पर होगा।

इस प्रकार हमने देखा कि पं0 श्रीनिवास ने सप्तक के 12 शुद्ध तथा विकृत स्वरों की स्थापना वीणा के तार की लम्बाई पर निम्नलिखित स्थानों पर की, जबकि वीणा के तार की लम्बाई कुल 36 इंच मानी गई है –

शुद्ध स्वर :–

1. षड्ज – 36'' तथा तार षड्ज 18''
2. ऋषभ – 32''

3. गान्धार – 30''
4. मध्यम – 27''
5. पंचम – 24''
6. धैवत – 21 2/3''
7. निषाद – 20''

विकृत स्वर :–

1. कोमल ऋषभ – 33 1/3''
2. तीव्र गान्धार – 28 2/3''
3. तीव्रतर मध्यम – 25 1/9''
4. कोमल धैवत – 22 2/9''
5. तीव्र निषाद – 19 1/9''

2.4 भातखण्डे के आधुनिक स्वरों की वीणा के तार पर स्थापना

यह तो मध्यकालीन स्वरों की वीणा के तार पर स्थापना हुई। आधुनिक ग्रन्थकारों ने भी मध्यकालीन ग्रन्थकारों की तरह वीणा के तार की लम्बाई पर अपने स्वरों की स्थापना विभिन्न नापों से की है। इन दोनों कालों के ग्रन्थकारों की इस स्थापना में बहुत कुछ समानता है, पर केवल कुछ स्वरों में अन्तर आ गया है। इस अन्तर का प्रमख कारण यह है कि आधुनिक ग्रन्थकार अपना शुद्ध थाट बिलावल मानते हैं जबकि मध्यकालीन ग्रन्थकारों का शुद्ध थाट आजकल के काफी थाट के समान था, जिसमें गान्धार तथा निषाद कोमल प्रयोग होते थे। आधुनिक काल के प्रतिनिधि पं0 भातखंडे जी माने जाते हैं, उन्होंने वीणा के तार की लम्बाई पर स्वरों की स्थापना अपनी पुस्तक ''अभिनव राग मञ्जरी'' में की है। इसलिए भातखंडे जी को राग–मञ्जरीकार कहकर सम्बोधित किया जाता है।

मञ्जरीकार के आधुनिक स्वरों की वीणा के तार पर स्थापना–

इसमें कोई संदेह नहीं कि मंञ्जरीकार ने अपने अपने स्वरों की स्थापना वीणा के तार की लम्बाई पर लगभग श्रीनिवास की तरह ही की है। परंतु अंतर दोनों में केवल कोमल ऋषभ, तीव्र मध्यम तथा कोमल धैवत इन तीनों स्वरों की स्थापना में है। यह अवश्य है कि मंञ्जरीकार ने शुद्ध थाट में मध्यकालीन ग्रन्थकारों की तरह कान्धार तथा निषाद कोमल न होकर शुद्ध हैं, परन्तु इससे स्वरों की स्थापना में कोई अंतर नहीं आता। कारण यह है कि मञ्जरीकार श्रीनिवास के कोमल गान्धार तथा कोमल निषाद को विकृत स्वर मान लिया है और तीव्र गान्धार तथा तीव्र निषाद को शुद्ध स्वर। इसलिए हमको केवल मञ्जरीकार के ऊपर लिखे तीन स्वरों की स्थापना को ही समझना होगा।

कोमल ऋषभ – मंज्जरीकार ने कोमल ऋषभ को मेरु और शुद्ध ऋषभ के बीच में स्थापित किया है। मेरु तथा शुद्ध ऋषभ का अंतर 36''–32''= 4 इंच का है। इसलिए कोमल ऋषभ जो ऋषभ से दो इंच पर है घुड़च के शुद्ध ऋषभ 32''+2''= 34 इंच पर हुआ।

तीव्र मध्यम – मज्जरीकार का तीव्र मध्यम, शुद्ध मध्यम तथा पंचम के ठीक बीच में है। मध्यम तथा पंचम का अंतर 27''–24''= 3 इंच है। इसलिए मज्जरीकार का तीव्र मध्यम जो पंचम से1 1/2 इंच पर है घुड़च से पंचम 24''+ 1 1/2''= 25 1/2''पर होगा।

कोमल धैवत – मंज्जरीकार अपने कोमल धैवत की स्थापना वीणा के तार पर पं0 श्रीनिवास की तरह षड्ज–पंचम भाव से करते हैं, परन्तु इन दोनों ग्रन्थकारों के कोमल धैवत स्वर की स्थापना में अंतर इसलिए है कि दोनों ग्रन्थकारों के कोमल ऋषभ में अंतर है। मज्जरीकार का कोमल ऋषभ घुड़च से 24 इंच पर है, इसलिए कोमल धैवत घुड़च से 34''÷ 3/2''= 34× 2/3''= 68/3''या 22 2/3''पर होगा।

इस प्रकार मंज्जरीकार के शुद्ध तथा विकृत स्वरों की स्थापना वीणा के तार की लम्बाई से निम्नलिखित नापों पर होगी–

शुद्ध स्वर :–

1. षड्ज – 36'' तथा तार षड्ज 18''
2. ऋषभ – 32''
3. गान्धार – 28''
4. मध्यम – 27''
5. पंचम – 24''
6. धैवत – 21 1/3''
7. निषाद – 19 1/3''

विकृत स्वर :–

1. कोमल ऋषभ – 34''
2. तीव्र गान्धार – 30''
3. तीव्रतर मध्यम – 25 1/2''
4. कोमल धैवत – 22 2/3''
5. तीव्र निषाद – 20 ''

मज्जरीकार ने अपने तीव्र निषाद की स्थापना भी वीणा के तार की लम्बाई पर षड्ज पंचम भाव से की है, परन्तु मज्जरीकार तथा श्रीनिवास की स्थापना समान है।

2.5 वीणा के तार की लम्बाई पर स्वरों की स्थापना में पं0 श्रीनिवास तथा मंज्जरीकार की तुलना

1. मध्यकालीन ग्रन्थकारों की तरह पं0 श्रीनिवास ने अपनी पुस्तक ''रागतत्व–विबोध'' में अपना शुद्ध थाट आजकल के काफी थाट के सदृश माना है।
मज्जरीकार का शुद्ध थाट आजकल का बिलावल थाट है जिसके सातों स्वर शुद्ध हैं।

2. पं0 श्रीनिवास कोमल ऋषभ की स्थापना करने के लिए षड्ज और ऋषभ की लम्बाई के तीन भाग करके षड्ज से दूसरे भाग पर तथा ऋषभ से पहले भाग पर कोमल ऋषभ को रखते हैं। इनका कोमल ऋषभ 33 1/3 इंच पर है।

परन्तु मज्जरीकार कोमल ऋषभ को षड्ज और शुद्ध ऋषभ के ठीक बीच में रखते हैं, इनका कोमल ऋषभ 34'' पर है।

3. पं0 श्रीनिवास ने कोमल धैवत को षड्ज–पंचम भाव से निकाला है। परन्तु उनका कोमल ऋषभ 33 1/4 इंच पर होने से कोमल धैवत 22 2/3 इंच पर है।

मज्जरीकार ने भी कोमल धैवत को षड्ज–पंचम भाव से निकाला है। परन्तु मज्जरीकार का कोमल ऋषभ स्थान, पं0 श्रीनिवास से नहीं मिलता इसलिए इनका कोमल धैवत भी पं0 श्रीनिवास से नहीं मिलता है जो 22 2/3 इंच पर है।

4. पं0 श्रीनिवास के तीव्रतर मध्यम की स्थापना करने के लिए तीव्र गान्धार और तार षड्ज के बीच की लम्बाई को तीन भागों में बाँट कर तीव्र गान्धार के प्रथम भाग पर तथा तार षड्ज के दूसरे भाग पर उसे रखा है इसलिए उनका तीव्रतर मध्यम 25 1/9 इंच पर है।

परन्तु मज्जरीकार ने तीव्र मध्यम को शुद्ध मध्यम तथा पंचम के ठीक बीच में रखा है। इसलिए उसकी लम्बाई घुड़च से 25 1/2 इंच है।

5. पं0 श्रीनिवास ने अपने तीव्र निषाद को स्थापित करने के लिए धैवत तार 'सा' की लम्बाई को तीन बराबर भागों में बाँटा और धैवत से दूसरे भाग पर तथा तार 'सा' से पहले भाग पर उसे रखा।

परन्तु मंज्जरीकार ने अपने तीव्र निषाद की स्थापना वीणा के तार की लम्बाई पर षड्ज–पंचम भाव से की।

6. पं0 श्रीनिवास के स्वरों में से केवल कोमल ऋषभ, तीव्रतर मध्यम तथा कोमल धैवत स्वरों को छोड़कर बाकी सब स्वर आधुनिक काल में प्रचलित हैं।

परन्तु मंज्जरीकार के सभी स्वर आजकल प्रचलित हैं। सरलता के लिए आगे के पृष्ठ पर तालिका द्वारा दोनों ग्रन्थकारों के स्वर की तुलना की जाती है।

वीणा के तार पर जिसकी लम्बाई 36 इंच है, मध्यकालीन तथा आधुनिक स्वरों की स्थापनाः–

स्वरों के नाम	श्रीनिवास के स्वर तार की लम्बाई पर	मंज्जरीकार के स्वर तार की लम्बाई पर

षड्ज	36 इंच	36 इंच
ऋषभ (कोमल)	33 1/3 इंच	34 इंच
ऋषभ (शुद्ध)	32 इंच	32 इंच
गान्धार (कोमल)	28 2/3 इंच (तीव्र)	30 इंच (कोमल)
गान्धार (शुद्ध)	30 इंच (कोमल)	28 2/3 इंच
मध्यम (शुद्ध)	27 इंच	27 इंच
मध्यम (तीव्र	25 1/9 इंच (तीव्रतर)	25 1/2 इंच (तीव्र)
पंचम	24 इंच	24 इंच
धैवत (कोमल)	22 2/9 इंच	22 2/3 इंच
धैवत (शुद्ध)	21 1/3 इंच	21 2/3 इंच
निषाद (कोमल)	19 1/9 इंच (तीव्र)	20 इंच (कोमल)
निषाद (शुद्ध)	20 इंच (कोमल)	19 1/9 इंच

मध्यकाल के सभी ग्रन्थकारों को एक मत से असमान श्रुतियों वाला माना जाता है। यहाँ भी दोनों वर्ग (समानवादी–असमानवादी) अपने–अपने तर्क देते हैं। उत्तर भारत के मध्यकालीन सात ग्रन्थकार हैं जिन्हें भातखण्डे जी ने उपयोगी माना है, इनमें से लोचन, अहोबल, हृदयनारायण देव और श्रीनिवास इन चारों का शुद्ध सप्तक वर्तमान काफी–थाट के समान था और शेष पुण्डरीक विट्ठल, श्री कण्ठ और भावभट्ट इन तीनों का शुद्ध –सप्तक दक्षिण के मुखारी (कनकांडी) के समान था, जिस के स्वर उत्तर के अनुसार ''सा रे रे म प ध ध सां'' हैं।

उत्तर में वीणा पर लम्बाई के आधार पर स्वर स्थापित किए गए हैं। वीणा पर मध्यम और पंचम क्रमशः 27 तथा 24 इंच पर हैं जिनका अन्तराल 9/8 है। यही अन्तराल गांधार–मध्यम तथा निषाद–तार षड्ज के मध्य भी होना चाहिए पर षड्ज 36 पर और ऋषभ 32 इंच पर मानने से षड्ज–ऋषभ का अन्तराल 9/8 होता है जबकि षड्ज–ऋषभ के मध्य कुल तीन ही श्रुतियाँ होती हैं, जिसका भिन्न में मान 10/9 होना चाहिए, पर 9/8 है, इसका अर्थ यह हुआ कि मध्यकालीन ग्रन्थकारों की श्रुतियाँ समान नहीं हुई।

प्राचीन मत में स्वरों की श्रुतियाँ अवरोह क्रम में थीं जिससे षड्ज–ग्राम के स्वर काफी थाट के रुप में प्राप्त होते थे। अवरोह क्रम से तात्पर्य यह है कि षड्ज' की चार श्रुतियाँ हैं तो अवरोह क्रम से 4, 3, 2, 1 षड्ज की श्रुतियाँ हुईं और यदि ऋषभ सातवीं श्रुति पर है तो 7, 6, 5 क्रम की तीन श्रुतियाँ ऋषभ की हुई। इसी प्रकार अन्य स्वरों को भी देखा जा सकता है। इस अवरोही क्रम में षड्ज, ऋषभ आदि क्रमशः चौथी और सातवीं श्रुति पर हैं। इसके विपरीत वर्तमान में आरोह क्रम में स्वर अपनी प्रथम श्रुति पर स्थापित किए जाते हैं जैसे षड्ज की चार श्रुतियाँ हैं तों षड्ज प्रथम श्रुति पर है और दूसरी, तीसरी, चौथी श्रुति तक षड्ज का क्षेत्र है। पाँचवीं पर ऋषभ स्थापित है और उसका क्षेत्र छठी और सातवीं श्रुति तक है। इसी प्रकार गांधार आदि सभी स्वरों को भी देखा जा सकता है। कहने का भाव यह है कि प्राचीन मत के स्वरों की श्रुतियाँ अवरोह में अपने से पूर्व के स्वर तक थीं जैसे षड्ज की श्रुतियाँ षड्ज और कोमल–निषाद के मध्य होती थीं। वर्तमान में स्वरों की श्रुतियाँ अपने से अगले स्वर तक होती हैं जैसे षड्ज से ऋषभ तक शड्ज की श्रुतियाँ होती हैं। वर्तमान में स्वरों की श्रुतियाँ अपने से अलग स्वर तक होती हैं जैसे षड्ज से

ऋषभ तक षड्ज की श्रुतियाँ होती हैं। गांधार की दो श्रुतियाँ हैं जो कि अर्ध–स्वर का अन्तराल होता है। प्राचीन मत में गांधार नौवीं श्रुति पर है और सातवीं पर ऋषभ है। आरोह क्रम में रखने पर गांधार आठवीं पर और दसवीं पर मध्यम आता है। यही अर्ध–स्वर का अन्तराल अन्तिम श्रुति पर स्वर को रखने से ऋषभ–गांधार के मध्य था प्रथम पर रखने से वहीं अन्तराल गांधार–मध्यम में हो गया यही स्थिति निषाद की भी है ।

इससे यह पता चलता है कि काफी के तत्कालीन शुद्ध–स्वर वर्तमान बिलावल के शुद्ध–स्वर कैसे बने। स्वरों को प्रथम श्रुति पर स्थापित करें या अन्तिम पर, श्रुतियों को समान माने या असमान ये सब सैद्धांतिक बिन्दु हैं। व्यवहारिक रुप में इनका कोई अस्तित्व नहीं है। गायक–वादक समान रुप से ही गाते बजाते हैं। प्रथम या अन्तिम श्रुति पर स्वरों की सैद्धान्तिक स्थापना से क्रियान्वयन में कोई अन्तर नहीं पड़ता है।

अभ्यास प्रश्न

1. लघु उत्तरीय प्रश्नः

(क) पं0 श्रीनिवास द्वारा गन्धार स्वर की स्थापना को समझाइये।
(ख) पं0 श्रीनिवास द्वारा स्वरों को स्थापित करने हेतु ली गई वीणा की व्याख्या कीजिए।
(ग) पं0 श्रीनिवास एवं पं0 भातखंडे के वीणा स्वर स्थापना में किन स्वरों के स्थान में अन्तर है।
(घ) पं0 भातखंडे के द्वारा स्थापित तीव्र मध्यम स्वर की व्याख्या कीजिए।

2. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

(क) वीणा के तार पर स्वरों की स्थापना सर्वप्रथम मध्यकालीन ग्रंथकार ..... ने की है।
(ख) पं0 श्रीनिवास ने ..... ग्रंथ की रचना की।
(ग) स्वरों की स्थापित करने हेतु वीणा के तार की लम्बाई को श्रीनिवास ने ..... इंच माना है।
(घ) मध्यम स्वर की स्थापना वीणा के तार पर ..... इंच पर हुई है।

3. सत्य/असत्य बताइयेः

(क) पं0 भातखंडे ने वीणा के तार पर स्वरों की स्थापना अधिकतर श्रीनिवास के जैसे की है।
(ख) पं0 भातखंडे का कोमल ऋषभ वीणा पर 24 इंच पर स्थापित हुआ है।
(ग) मज्जरीकार ने तीव्र निषाद की स्थापना षड्ज–पंचम भाव से की है।
(घ) पं0 भातखंडे का शुद्ध थाट वर्तमान में बिलावल थाट के सदृश है।

2.6 स्वरों की आंदोलन संख्या

तानपूरे अथवा सितार के तार को छेड़ने से उसमें कम्पन अथवा आन्दोलन उत्पन्न होते हैं। तार को छेड़ने पर वह एक ओर कुछ दूरी तक जाता है और फिर लौटकर उतनी ही दूर पीछे की ओर जाता है। बाद में वह अपने स्थान पर आ जाता है। परन्तु अपने पूर्व स्थान पर आने पर वह रुकता नहीं है, बल्कि इसी प्रकार आगे–पीछे कम्पन करता है और तब तक कम्पन करता रहता है जब कि उसका वेग शान्त नहीं

होता। अपने स्थान से एक ओर जाकर तथा फिर दूसरी ओर जाकर अपने पूर्व स्थान पर जब तार लौटता है, तब इस प्रकार वह एक आन्दोलन करता है। एक आन्दोलन के बाद तार दूसरा आन्दोलन करता है और फिर तीसरा। इसी प्रकार इन आन्दोलनों का क्रम बराबर चलता रहता है। परन्तु जैसे–जैसे तार पर किये गये प्रहार की शक्ति कम होती जाती है वैसे–वैसे तार के आगे–पीछे आने की दूरी कम होती जाती है और अन्त में तार शान्त हो जाता है। तार में कम्पन शान्त होने से उसकी ध्वनि भी शान्त हो जाती है।

आन्दोलन को नापने के लिए यह देखा जाता है कि एक सेकेण्ड में तार कितने आन्दोलन करता है, अर्थात् आन्दोलनों का मापदण्ड एक सेकेण्ड माना जाता है। एक सेकेण्ड में आन्दोलनों की संख्या जितनी कम होगी, नाद उतना ही नीचा होगा तथा एक सेकेण्ड में आन्दोलनों की संख्या जितनी अधिक होगी, नाद उतना ही ऊँचा रहेगा। इसलिए बाद का ऊँचा–नीचापन हर सेकेण्ड में होने वाली आन्दोलन संख्याओं पर निर्भर होता है। दूसरी बात यह है कि एक सेकेण्ड में आन्दोलन नियमित होना चाहिए।

वैज्ञानिकों ने यह पता लगाया है कि सबसे नीचा नाद, जो साधारणतः सुनाई नहीं पड़ता परन्तु अभ्यास होने पर सुना जा सकता है, एक सेकेण्ड में 16 आन्दोलन करता है। कुछ विद्वानों का विचार है कि एक सेकेण्ड में 20 आन्दोलन करने वाला नाद हम साधारणतः सुन सकते हैं। सबसे ऊँचे नाद की आन्दोलन संख्या एक सेकेण्ड में लगभग 30,000 हो सकती है, परन्तु इतनी ऊँची आवाज संगीत के काम की नहीं है। पाश्चात्य विद्वान् एक सेकेण्ड में 16 आन्दोलनों से लेकर एक सेकेण्ड में 4000 आन्दोलन संख्याओं के स्वरों को बदल कर संगीतोपयोगी 9 सप्तकों की स्थापना करते हैं। इन 9 सप्तकों में से भी केवल बीच के तीन या चार सप्तकों के स्वर ही संगीत का अधिक आनन्द देते हैं। विद्वानों ने यह भी अनुसंधान किया है कि मध्य सप्तक के षड्ज की आन्दोलन संख्या एक सेकेण्ड में कितनी है– इस बात पर लोगों में कुछ मतभेद हो गया है, क्योंकि कुछ विद्वान् मध्य षड्ज में 240 आन्दोलन संख्या एक सेकेण्ड में मानते हैं तथा कुछ विद्वान् मध्य षड्ज में 256 संख्या एक सेकेण्ड में मानते हैं। नीचे दोनों मतों के अनुसार पाश्चात्य सप्तक के शुद्ध तथा विकृत स्वरों की आन्दोलन संख्याएँ दी जाती हैं।

नोट – सरलता के लिए एक सेकेण्ड में आन्दोलन संख्या को केवल फ्रीक्वेन्सी कहते हैं। उदाहरण के लिए, यदि हमें कहना है कि ''सा'' की आन्दोलन संख्या एक सेकेण्ड में 240 है तो कम शब्दों में केवल यह कह सकते हैं कि सा= 240 फ्रीक्वेन्सीज

पाश्चात्य संगीत में सप्तक के 7 स्वर क्रम से C, D, E, F, G, A , B के नामों से पुकारे जाते हैं। इन स्वरों का वर्णन आगे किया जायेगा।

अब यदि मध्य षड्ज 240 फ्रीक्वेन्सीज का माना जाय तो सप्तक के अन्य शुद्ध तथा विकृत स्वर इस प्रकार हैं:–

शुद्ध स्वर :–

1. सा (Middle-C) – 240 फ्रीक्वेन्सीज (आन्दोलन संख्या)
2. रे D – 270 फ्रीक्वेन्सीज (आन्दोलन संख्या)
3. ग E – 320 फ्रीक्वेन्सीज (आन्दोलन संख्या)
4. म F – 320 फ्रीक्वेन्सीज (आन्दोलन संख्या)
5. प G – 360 फ्रीक्वेन्सीज (आन्दोलन संख्या)

6. ध A – 400 फ्रीक्वेन्सीज (आन्दोलन संख्या)
7. नि B – 450 फ्रीक्वेन्सीज (आन्दोलन संख्या)
8. तार षड्ज – 480 फ्रीक्वेन्सीज (आन्दोलन संख्या)

विकृत स्वर :–

1. रे (कोमल) – 256 फ्रीक्वेन्सीज
2. ग (कोमल) – 288 फ्रीक्वेन्सीज
3. म (तीव्र) – 337 1/2 फ्रीक्वेन्सीज
4. ध (कोमल) – 384 फ्रीक्वेन्सीज
5. नि (कोमल) – 432 फ्रीक्वेन्सीज

अब यदि मध्य षड्ज 256 फ्रीक्वेन्सीज माना जायः–

शुद्ध स्वर :–

1. सा – 256 फ्रीक्वेन्सीज
2. रे – 288 फ्रीक्वेन्सीज
3. ग – 230 फ्रीक्वेन्सीज
4. म – 241 1/2 फ्रीक्वेन्सीज
5. प – 384 फ्रीक्वेन्सीज
6. ध – 426 1/2 फ्रीक्वेन्सीज
7. नि – 480 फ्रीक्वेन्सीज
8. तार षड्ज – 512 फ्रीक्वेन्सीज

विकृत स्वर :–

1. रे (कोमल) – 273 1/15 फ्रीक्वेन्सीज
2. ग (कोमल) – 307 1/5 फ्रीक्वेन्सीज
3. म (तीव्र) – 360 फ्रीक्वेन्सीज
4. ध (कोमल) – 409 3/5 फ्रीक्वेन्सीज
5. नि (कोमल) – 460 4/5 फ्रीक्वेन्सीज

इन दोनों मतों में पहला मत अर्थात् सा=240 फ्रीक्वेन्सीज अधिक माना जाता है, इसलिए आगे इसी का वर्णन किया जायेगा।

2.6.1 आन्दोलन संख्या से तार की लम्बाई तथा तार की लम्बाई से स्वरों की आन्दोलन संख्या को निकालना – यदि किसी स्वर की आन्दोलन संख्या दी गयी हो तो हमको उस स्वर के तार की लम्बाई बड़ी सरलता से मालूम हो सकती है, परन्तु हमको यह याद रखना चाहिए कि षड्ज(मध्य) की आन्दोलन संख्या 240 है तथा इसके तार की लम्बाई 36 इंच है।

अब सबसे पहले दिये हुए स्वर की आन्दोलन संख्या और षड्ज (मध्य स्वर) की आन्दोलन संख्या का गुणान्तर निकालते हैं। गुणान्तर सदैव बड़ी संख्या का भाग देने से निकलता है, क्योंकि गुणान्तर 1 से बड़ा होता है। उदाहरण के लिए यदि पंचम की आन्दोलन संख्या 360 दी गयी हो तो षड्ज और पंचम का गुणान्तर (स्वरान्तर) =360 / 240 × 3 / 2 होगा।

गुणान्तर निकल जाने पर मध्य षड्ज के तार की लम्बाई में उसका भाग देते हैं जिससे पूछे गये स्वर की लम्बाई तार पर मालूम हो जाती है। इधर पंचम स्वर की तार पर लम्बाई 36 इंच ÷3 / 2 = 24 इंच होगी।

इस प्रकार यदि तार पर किसी स्वर की लम्बाई दी गयी हो तो उस स्वर की आन्दोलन संख्या मालूम की जा सकती है। इसके साथ ही हमें ध्यान रखना है कि मध्य षड्ज की आन्दोलन संख्या 240 है तथा तार की लम्बाई 36 इंच है। सबसे पहले दी गयी स्वर की लम्बाई तथा मध्य षड्ज की लम्बाई का गुणान्तर निकालते हैं। गुणान्तर निकालते समय, बड़ी संख्या ऊपर रखते हैं तथा छोटी संख्या नीचे– जैसे, यदि मध्यम स्वर की तार पर लम्बाई 27 इंच दी गयी हो तो इसका गुणान्तरः–

$$\frac{\text{मध्य षड्ज की लम्बाई}}{\text{मध्य स्वर की लम्बाई}} = 36 / 27 = 4 / 3 \text{ हुआ।}$$

हमको मध्य षड्ज की आन्दोलन संख्या 240 मालूम है। इसलिए मध्यम स्वर की आन्दोलन संख्या निकालने के लिए मध्य षड्ज की आन्दोलन संख्या में षड्ज और मध्यम स्वरों के गुणान्तर से गुणा कर देना चाहिए। अब मध्यम स्वर की आन्दोलन संख्या 240× 4 / 3= 320 हुई। इसी प्रकार किसी भी स्वर की आन्दोलन संख्या मालूम की जा सकती है यदि उसकी तार पर लम्बाई दी गयी है।

2.6.2 पं0 श्रीनिवास, पं0 भातखण्डे तथा पाश्चात्य स्वरों की आन्दोलन संख्या

अगले चित्र द्वारा मध्यकालीन, आधुनिक तथा पाश्चात्य स्वरों की आन्दोलन संख्याओं में अन्तर समझाया जाता है।

स्वर का मान	श्रीनिवास के स्वरों कीआन्दोलन संख्या	मंज्जरीकार के स्वरों की आंदोलन संख्या	पाश्चात्य स्वरों की आन्दोलन संख्या
सा	240	240	240
रे कोमल	259 1 / 5	254 2 / 20	256
रे शुद्ध	270	270	270
ग कोमल	278 शुद्ध	288	288
ग शुद्ध	301 17 / 42	301 17 / 42	301
म शुद्ध	320	320	320

म तीव्र	344 8/33	338 14/17	337 1/2
प	360	360	360
ध कोमल	388 4/5	381 3/17	384
ध शुद्ध	405	405	400
नि कोमल	442 शुद्ध	432	432
नि शुद्ध	462 4/3 विकृत	442 4/43	450

श्रुतियों को समान मानने वालों की दृष्टि से विचार किया जाए तो तीन विधियों से इस पर प्रकाश डाला जा सकता है। मध्य–षड्ज से तार–षड्ज के अन्तराल के 22 बराबर भाग किए जाएँ इसकी तीन विधियाँ हो सकती हैं:–

(1) मध्य–षड्ज की आन्दोलन संख्या 240 है और तार–षड्ज की 480 है। तार–षड्ज व मध्य –षड्ज का अन्तर (480–240=)240 आन्दोलन है। इसके 22 बराबर भाग किए जाए।

(2) वीणा के तार पर मध्य–षड्ज 36 इंच पर है और तार–षड्ज 18 इंच पर है । इन दोनों स्वरों के अन्तर वाले भाग की लम्बाई 18 इंच है इसके 22 बराबर भाग किए जाएँ और

(3) लाग–रिद्म के अनुसार मध्य–षड्ज यदि (एक) है तो तार–षड्ज (दो) जिसका सेवर्ट विधि में एक और दो के अन्तराल को 301 घटकों से निरुपित करते हैं। इन 301 घटकों के 22 भाग किए जाएँ तो श्रुतियाँ समान सिद्ध होंगी ।

अभ्यास प्रश्न

1. एक शब्द में उत्तर दो:

(क) सबसे नीचा नाद एक सेकण्ड में कितने आन्दोलन करता है?

(ख) मध्य सप्तक के षड्ज की आंदोलन संख्या कितनी है?

(ग) पं0 श्रीनिवास एवं पं0 भातखंडे के अनुसार शुद्ध धैवत की आन्दोलन संख्या क्या है?

2. सत्य/असत्य बताइये:

(क) आंदोलन संख्या नापने हेतु प्रति सेकेण्ड कम्पन्न देखे जाते हैं।

(ख) संगीतपयोगी नाद अधिकतम 4000 आंदोलन संख्या का होता है।

(ग) पं0 श्रीनिवास द्वारा पंचम स्वर की आन्दोलन संख्या 260 बताई गई है।

3. लघु उत्तरीय प्रश्न:

(क) स्वरों की आंदोलन संख्या से आप क्या समझते हैं?बताइए

(ख) पं0 भातखंडे द्वारा स्वरों की आन्दोलन संख्या के विषय में बताइये।

2.7 सारांश

मध्यकाल के सभी ग्रन्थकारों को एक मत से असमान श्रुतियों वाला माना गया है। इसी कारण श्रुतियों पर स्वरों की स्थापना न करके वीणा के तार पर भिन्न–भिन्न नापों से करते हैं। स्वरों की स्थापना का सबसे महत्वपूर्ण एवं स्पष्ट वर्णन हमें श्रीनिवास के 'राग तत्वविबोध' नामक ग्रंथ में प्राप्त होता है। आधुनिक काल में पं0वि0ना0 भातखंडे ने भी स्वरों की स्थापना का सिद्धान्त पं0 श्रीनिवास के समान दिया है परन्तु स्वरों की स्थापना के आधार पर पं0 श्रीनिवास के स्वर काफी थाट के सदृश तथा पं0 भातखण्डे के स्वर बिलावल थाट के समान हैं पं0 श्रीनिवास का शुद्ध सप्तक वर्तमान काफी है क्योंकि वीणा पर स्वरों की स्थापना करते समय जो शुद्ध स्वर बताए गए हैं वे वर्तमान काफी के ही स्वर हैं अर्थात् इसके शुद्ध सप्तक के स्वरों में गांधार व निषाद उतरे हुए थे। जिन्हें हम कोमल गांधार– निषाद कहते हैं वे श्रीनिवास के शुद्ध गांधार–निषाद थे। पं0 श्रीनिवास ने शेष स्वर बिलावल वाले ही माने हैं उत्तर भारत के जितने भी ग्रन्थकार हैं उनमें पुण्डरीक विट्ठल, श्रीकण्ठ और भावभट्ट के अतिरिक्त सभी के सप्तक वर्तमान काफी के समान है, अतः राग–तत्व–विबोध को उत्तर भारत का ही ग्रन्थ मानना उचित होगा ।

22 श्रुतियों में स्वरों की स्थापना को लेकर एक नवीन दृष्टिकोण से प्राचीन षड्ज–ग्राम की श्रुतियों की व्यवस्था को बिना परिवर्तित किए भातखण्डे जी ने स्वर की अन्तिम श्रुति के स्थान पर स्वरों को प्रथम श्रुति पर स्थापित करके बिलावल को ही प्राचीन आधार दिया।

इसी प्रकार स्वरों की स्थापना आन्दोलन संख्या के आधार पर की गई। प्रत्येक स्वर की आन्दोलन संख्या भिन्न–भिन्न है। मध्य षड्ज की आंदोलन संख्या 240 तथा तार षड्ज की 480 तथा इन्हीं 240 एवं 480 के बीच अन्य समस्त स्वरों की आन्दोलन संख्या निर्धारित हो चुकी है, जो वास्तव में वैज्ञानिक है।

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.5 :–

2. रिक्त स्थान की पूर्ति

(क) वीणा के तार पर स्वरों की स्थापना सर्वप्रथम मध्यकालीन ग्रंथकार **.....अहोबल**..... ने की है।

(ख) पं0 श्रीनिवास ने ....**राग–तत्वविबोध**..... ग्रंथ की रचना की।

(ग) स्वरों की स्थापित करने हेतु वीणा के तार की लम्बाई को श्रीनिवास ने **....36.....** इंच माना है।

(घ) मध्यम स्वर की स्थापना वीणा के तार पर **....27.....** इंच पर हुई है।

3. सत्य/असत्य बताइये :–

(क) पं0 भातखंडे ने वीणा के तार पर स्वरों की स्थापना अधिकतर श्रीनिवास के जैसे की है। **(सत्य)**

(ख) पं0 भातखंडे का कोमल ऋषभ वीणा पर 24 इंच पर स्थापित हुआ है। **(असत्य)**

(ग) मज्जरीकार ने तीव्र निषाद की स्थापना षड्ज–पंचम भाव से की है। **(सत्य)**

(घ) पं0 भातखंडे का शुद्ध थाट वर्तमान में बिलावल थाट के सदृश है। **(सत्य)**

2.6 :–

1. एक शब्द में उत्तर दो :–

(क) सबसे नीचा नाद एक सेकण्ड में कितने आन्दोलन करता है? **उत्तर** (16)

(ख) मध्य सप्तक के षड्ज की आंदोलन संख्या कितनी है? **उत्तर** (240)

(ग) पं0 श्रीनिवास एवं पं0 भातखंडे के अनुसार शुद्ध धैवत की आन्दोलन संख्या क्या है? **उत्तर** (405)

2. सत्य/असत्य बताइये :–

(क) आंदोलन संख्या नापने हेतु प्रति सेकेण्ड कम्पन्न देखे जाते हैं। **(सत्य)**

(ख) संगीतपयोगी नाद अधिकतम 4000 आंदोलन संख्या का होता है। **(सत्य)**

(ग) पं0 श्रीनिवास द्वारा पंचम स्वर की आन्दोलन संख्या 260 बताई गई है। **(असत्य)**

2.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. गर्ग ,लक्ष्मी नारायण (1997), संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।

2. भातखंडे, विष्णु नारायण भातखंडे, (1966) उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, संगीत कार्यालय, हाथरस।

2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सर्राफ, डॉ0 रमा (2004) भारतीय संगीत सरिता, कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

2. चौधरी, विमल कांत राय, भारतीय संगीत कोश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

(क) वीणा के तार की लम्बाई के आधार पर पं0 श्रीनिवास के स्वर स्थापना के सिद्धांत का सविस्तार वर्णन कीजिए?

(ख) पं0 श्रीनिवास एवं भातखंडे द्वारा स्वरों की आन्दोलन संख्या को समझाते हुए तुलना कीजिए?

इकाई 3 – आलाप व तान का वर्णन एवं इनके प्रकार

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 राग सौन्दर्य के प्रमुख तत्व ''आलाप एवं तान''
3.4 आलाप गायन
3.4.1 प्राचीन आलाप गायन एवं इसके प्रकार
3.4.2 आधुनिक आलाप गायन एवं इसके प्रकार
3.5 तान
3.5.1 राग सौन्दर्य में तान
3.5.2 तान के प्रकार
3.6 सारांश
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई प्रदर्शन कला–संगीत में स्नातकोत्तर, तृतीय सेमेस्टर (एम0पी0ए0एम0–201) पाठ्यक्रम की तीसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकते हैं कि राग गायन के सौन्दर्य को पूर्ण करने हेतु विभिन्न तत्वों का विशेष योगदान रहता है, जैसे बंदिश, स्वर सन्निवेश, आलाप, तान इत्यादि।

इस इकाई में आलाप व तान का वर्णन किया गया है। आलाप एवं तान राग गायन के विस्तार में विशेष भूमिका रखते हैं। राग के आभूषण आलाप एवं तान ही हैं। प्रस्तुत ईकाई में आलाप गायन के प्राचीन से आधुनिक सभी रुपों का वर्णन किया गया है। तान एवं इसके अनेक प्रकारों को समझाया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप आलाप गायन के विशिष्ट प्रयोग एवं स्वरुप को समझा सकेंगे जिससे प्रयोगात्मक दृष्टि से भी इसे सीखना आसान हो सकेगा। इसके साथ तान के विभिन्न प्रकारों के महत्व एवं प्रयोग को समझा सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप–

- बता सकेंगे कि राग गायन में आलाप अंग किस प्रकार प्रयुक्त होता है।
- समझा सकेंगे कि प्रत्येक गायन विधा में आलाप एवं तान का स्वरुप क्या होगा।
- बता सकेंगे कि प्राचीन समय एवं आधुनिक समय के आलाप गायन में क्या परिवर्तन आए हैं।
- बता सकेंगे कि आलाप एवं तान ही राग गायन की शुद्धता एवं विस्तार क्रम को बनाए रख सकते हैं।

3.3 राग सौन्दर्य के प्रमुख तत्व ''आलाप एवं तान''

सौन्दर्य रमणीयता का वह रुपांतर है, जिसमें साधारण चमत्कृति से परे लोकोत्तर आनंद का निर्माण करने की शक्ति होती है। भारतीय दार्शनिकों तथा साहित्यकारों की दृढ़ मान्यता रही कि बाह्य सौंदर्य अंतः सौंदर्य से विरहित नहीं रह सकता। कलाकार संसार या प्रकृति के संपर्क में आकर उनसे प्रभावित होता है। उस अनुभूति को, उन हद्यगत भावों को कला–कृति के रुप में व्यक्त करता है।

चाहे उत्तर–भारतीय संगीत हो या दक्षिणात्य, राग भारतीय शास्त्रीय संगीत का महत्वपूर्ण तथा प्रधान विषय है। गणित की दृष्टि से देखा जाए तो, स्वरों के विभिन्न संयोग से असंख्य रागों की रचना संभव है, परंतु प्रचलित रागों की संख्या करीब डेढ़ सौ ही है। रागों की इस सीमित संख्या का कारण यही है कि स्वरों के मेल के अंतर्गत उन्हीं स्वर–समुदायों को राग का पद दिया गया है, जिनमें रंजकता है, नाद–सौंदर्य है तथा कलात्मक वातावरण निर्माण करने की क्षमता है। सौंदर्य का संबंध राग से प्रारंभ से ही रहा है। प्राचीन विद्वानों ने 'रंजयतीति रागः' कहकर राग का संबंध सौंदर्य से जोड़ा है। राग का साध्य रंजकता तथा सौंदर्य है। कभी सौंदर्य स्वर से, तो कभी लय से स्फुटित होता है। प्रत्येक राग का अपना एक स्वरुप, एक व्यक्तित्व होता है, जो उसमें लगने वाले स्वर, उनके परस्पर संबंध, उनके स्वर–स्थान, विश्रांति–स्थान, स्वर–लगाव, कण, मीड़ आदि पर निर्भर करता है। प्रत्येक राग में वही सात शुद्ध तथा पाँच विकृत स्वरों में से कुछ स्वर लगते हैं, पर समान स्वर होने पर भी उनके लगाने का ढंग, स्वरों के अल्पत्व व बहुत्व के कारण प्रत्येक राग की आकृति अलग हो जाती है। राग के तीन घटक हैं–1. आलाप, 2. प्रबंध तथा 3. तान। गीत या धुन राग के बाह्य रुप का निर्माण करते हैं, पर आलाप राग की आत्मा है, राग–विस्तार में ही राग की सुंदरता केंद्रित रहती है।

आधुनिक भारतीय शास्त्रीय संगीत राग प्रधान है। राग प्रदर्शन में भाव एवं कला पक्ष दोनों का विशेष महत्व होता है। भाव पक्ष के अंतर्गत कलाकार अपने मनोभावों को स्वरों एवं शब्दों के माध्यम से व्यक्त करता है जबकि कला पक्ष के अंतर्गत कलाकार अपनी योग्यता द्वारा आनन्द की प्राप्ति कराता है। भाव एवं कला ये दोनों ही एक–दूसरे पर आधारित हैं। आलाप संगति के भाव पक्ष का विशेष अंग है, आलाप किसी भी राग को प्रस्तुत करने का सही और स्पष्ट माध्यम है, जिसके द्वारा कलाकार राग के स्वरुप को श्रोताओं के सम्मुख प्रस्तुत करता है। आधुनिक काल में गायक कोई भी गीत गाने से पहले उस गीत में लगने वाले स्वरों का थोड़ा–सा स्वरुप दिखाता है, उसको भी आलाप कहा जाता है। यह स्वरुप चाहे सरगम के रुप में किया जाए या आकार के रुप में किया जाए। आलाप राग का मूल स्तम्भ है। यदि हम कहें कि राग का मूल ढांचा आलाप पर टिका हुआ है तो निराधार नहीं। आलाप राग का परिचय कराता है। नई कल्पनाओं द्वारा हद्य की भावनाओं को सुंदर से सुंदरतम करके आलाप में गंभीरता पैदा करके श्रोताओं को घुमाने का प्रयत्न छोड़कर वे चमत्कारिता में जुट जाते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि तान से

सौंदर्य–सृष्टि नहीं हो सकती या गायन या वादन में चमत्कार दिखाना अन्यायपूर्ण है। तान को तो प्राचीन संगीतज्ञों ने चमत्कारिक दृष्टि से विशेष उपयोगी माना है। यहाँ तक कि ऐसा कहा गया है कि ध्रुपद–धमार, जो तानविहीन गायन–शैलियाँ हैं, आज भी ध्रुपद गाने से पहले गायक घंटों नोम्–तोम् का आलाप करके ध्रुपद–गायन ताल–सहित आरंभ करते हैं। परंतु फिर भी ये शैलियाँ व्यवहार में कम होती जा रही हैं। स्पष्ट है कि तानों का सुंदर प्रयोग इनमें नहीं किया जाता है। पं0 जगदीशनारायण पाठक ने कहा है–''यह कहना कि तान ध्रुपद–धमार में वर्जित है, इस तथ्य का समर्थक हो सकता है कि उनका संगीत 'मूर्च्छनाहीन' है अथवा उसको व्यवहार में लाते हुए भी उनको उसका साक्षात् ज्ञान नहीं है। इसी कारण ध्रुपद–धमार कर्णकटु एवं क्लिष्ट संगीत होता जा रहा है। अंत में यही कहा जा सकता है कि आलाप चाहे किसी भी शैली में हो उसका मूल उद्देश्य राग के स्वरुप चलन आदि को स्पष्ट करना होता है।

3.4 आलाप गायन

किसी राग के स्वरों का उसके वादी, सम्वादी तथा विशेष स्वरों को दिखलाते हुए विस्तार करना, और साथ में उसे वर्ण, गमक, अलंकार आदि से आभूषित करना, उस राग का आलाप कहलाता है। राग का स्वरुप स्पष्ट करने के लिए उसके स्वरों को सजा–सजाकर धीमी लय में उसका आलाप करते हैं। आलाप द्वारा गायक अथवा वादक राग के विशेष स्वर के साथ राग का स्वरुप श्रोताओं के सम्मुख प्रस्तुत करता है और अपनी हृदय–गत भावनाओं को राग के स्वरों द्वारा दूसरों तक पहुँचाता है। अतएव यह स्पष्ट है कि आलाप भाव–प्रधान होते हैं। भारतीय राग का आधार आलाप है। इसका मुख्य उद्देश्य राग के रुप को व्यक्त करना है। अनेक स्वरों को मिलाकर एक आकृति की रचना की जाती है। आलाप करने के लिए शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाता, वरन् कुछ निरर्थक ध्वनियों का प्रयोग किया जाता है। यही संगीत को शुद्ध कला बना देती है। आलाप में कलाकार पर कोई बंधन नहीं होता, न कोई सीमा। इसमें लय का 'बंधन' नहीं होता। प्रत्येक संगीतकार की अपनी कल्पना तथा योग्यता है कि वह अपने अनुभव को इस प्रकार व्यक्त करे कि रसिकों को रस तथा आनन्द की प्राप्ति हो। प्रत्येक राग का आलाप उस राग की सीमा में ही रहता है। जैसे–जैसे कलाकार स्वरों को लेकर आगे बढ़ता जाता है, राग–सौंदर्य निखर उठता है। हर एक गायक–वादक आलाप का प्रारंभ मध्य 'सा' से ही करता है। जब स्वराकृति पूर्ण हो जाती है, उसका अन्त भी मध्य 'सा' में ही किया जाता है। एक आलाप के बाद दूसरा आलाप, फिर तीसरा, इस प्रकार आगे बढ़ते जाते हैं। राग–समाधि में लीन होने के बाद कलाकार के हृदय से स्वरों की लहरें उठ–उठकर श्रोतारुपी तट को सराबोर करती जाती है। राग की प्रकृति के अनुसार स्वर–विस्तार किया जाता है। कुछ राग मीड़–प्रधान होते हैं तो कुछ साधारण। मल्हारों के प्रकार अधिकतर मीड़–प्रधान राग हैं। इस राग के स्वर–विस्तार में जब मीड़ का प्रयोग होता है तो राग का रुप खिल उठता है। स्वर वही है, पर उनको कहने का ढंग अलग है। मेघमल्हार मल्हार का प्रकार है और मध्यमादि सारंग सारंग का। दोनों के स्वर एक–जैसे हैं। अंतर केवल चलन में है। इन दोनों रागों का पूर्ण स्पष्टीकरण आलाप में ही दिखाई देता है। किस स्वर को कितना लगाया जाए, किसके सहारे लगाया जाए तथा किस परिमाण में लगाया जाए, इसी में ही रागों का पृथक्करण तथा आलाप का सौंदर्य निहित है। कोमल गांधार बहुत–से रागों में लगता है, परंतु सभी में एक–जैसा नहीं लगता। दरबारी का आंदोलित उतरा गांधार, नायकी, अड़ाना, सूहा, बागेश्री के कोमल गांधार से अलग रहता है। तोड़ी के अतिकोमल गंधार की अपनी अलग ही शान है। अतः किस स्वर पर कण लगाया जाए, कौनसा स्वर गमक से तथा कौन सा मीड़ के साथ लिया जाएगा, यह सौंदर्य इतना सूक्ष्म है कि इसे शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। स्वरों पर पहुँचना ही नहीं, उनके छेड़ने से भी सौंदर्य है। स्वर–विस्तार में इन–सबका ध्यान रखने से राग का सौंदर्य और निखर उठता है। इसी सूक्ष्म प्रयोग की भिन्नता से घरानों का जन्म हुआ है। प्रत्येक घराने के स्वर लगाने तथा राग–विस्तार की अपनी अलग शैली है।

राग का सारा सौंदर्य विभिन्न प्रकार के स्वर लगाने पर निर्भर करता है। प्रत्येक स्वर का एक सौंदर्य होता है, आवश्यकता है उसे बाहर लाने की। राग के प्रस्तुत करने से पहले गायक या वादक के मन में सौंदर्य का सूक्ष्म रुप होता है। उसी को वह नादात्मक रुप में या लयात्मक रुप में व्यक्त करता है। कलाकार के मन का सौंदर्य–आधार बाह्य सौंदर्य–आधार से एकरस हो जाता है। इस सौंदर्य–आधार में निरंतरता, मधुरता, अखंडता आदि तत्वों से एक पृष्ठभूमि तैयार होती है। इसी के आधार पर एक–के–बाद–एक रुप का सृजन होता है। प्रत्येक रुप उस पृष्ठभूमि में एकाकार होता रहता है। राग प्रारंभ करने के बाद आलाप द्वारा राग का वातावरण बना दिया जाता है। तानों में तो कई बार राग का शुद्ध रुप नहीं रह पाता, फिर भी स्वर–विस्तार के द्वारा राग का वातावरण इस प्रकार कलाकार व श्रोताओं के दिल व दिमाग में छा जाता है कि थोड़ी–सी अव्यवस्था पता नहीं चलती। स्वर–समूह का विस्तार, गणित की दृष्टि से असंख्य रीति से हो सकता है, पर उनमें से विशेष प्रकार के विस्तार को चुनकर विविध गायकियों का निर्माण हुआ है। ध्रुपद–धमार में खटका, मुर्की, तान आदि नहीं गाए जाते, अतः इनमें आरंभ में राग का पूरा विस्तार 'नोम्–तोम्' के आलाप से किया जाता है। गायन–शैलियों में सबसे प्रचलित प्रकार है ख्याल। इसमें राग–विस्तार की अधिक गुंजाइश रहती है। क्योंकि आकार–आलाप के साथ ही ख्याल के बोलों को लेकर भी आलाप किया जा सकता है।

अधिकतर विद्वानों ने माना है कि भारतीय रागों में सौंदर्य–बिन्दु तीन हैं–1. श्रोताओं में उत्कंठा निर्माण करना, 2. अपेक्षित अवस्था तक बढ़ाना, 3.उत्कंठा की समाप्ति करना। आलाप में उत्कंठा का निर्माण होता है। जब तक सम नहीं आती, दिमाग में तब तक तनाव बना रहता है, जो मुखड़ा लेकर सम पर आते ही समाप्त हो जाता है। आलाप में कौन सा स्वर या स्वर–समुदाय किस प्रकार उत्कंठा जाग्रत् करता है, यही सौंदर्य–बिंदु है। रानाडे के अनुसार, 'सा, म, प' राग–उत्कंठा को विसर्जित करते हैं और इनके आस–पास के स्वर उत्कंठा जाग्रत् करते हैं। तिहाई लेकर सम तक आने से पहले उत्कंठा रहती है और सम पर आते ही एक अपूर्व सौंदर्य साकार हो उठता है। तनाव और संकल्प साथ–साथ चलता रहता है। सम पर आना, एक मानसिक संतुलन प्रदान करता है। आलाप के प्रत्येक रुप में कभी उत्कंठा जाग्रत् हो उठती है तो कभी विसर्जन, यही तो आलाप का सौंदर्य है।

3.4.1 प्राचीन आलाप गायन एवं इसके प्रकार – प्राचीन समय में आलाप करने के कई प्रकार प्रचलित थे जो रागालाप, स्वस्थान नियम, आलाप्तिगान, रुपकालाप आदि नामों से पुकारे जाते थे। इसका वर्णन पुस्तक के दूसरे भाग में किया जायेगा। परन्तु आधुनिक समय में आलाप–गायन दो प्रकार से होता है– एक तो गीत गाने के पूर्व ताल रहित होता है जिसे गायक नोम तोम तथा त, न, री, द, त न आदि शब्दों द्वारा अथवा आकार में गाता है तथा दूसरा गीत के साथ ताल–बद्ध होता है जिसे गायक आकार में अथवा गीत के बोलों के साथ गाता है।

प्राचीन काल में आलाप के तीन प्रकार प्रचलित थे। रागलाप, रुपकालाप, आलप्ति गान।

रागालाप – राग में लगने वाले स्वरों का विस्तार जब (आलाप विधि द्वारा) राग के 10 लक्षण ग्रह, अंश, न्यास, मंद्र, तार, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाडवत्व एवं औडवत्व आदि द्वारा स्पष्ट रुप से किया जाता था, उसे रागालाप कहा जाता था।

राग–लक्षण – राग–गायन से पहले जाति–गायन का प्रचार था। भरत ने कुल 18 (11 विकृत, 7 शुद्ध) जातियां मानीं। उन्हीं जातियों को गाने–बजाने के लिए उसने 10 लक्षण माने। बाद में यही लक्षण राग–गायन से लागू किए गए। यदि हम कहें कि राग–गायन का मूल ढांचा जाति–गायन के तत्वों पर टिका हुआ है तो निराधार नहीं। गायन के 10 लक्षणों का विस्तारपूर्वक वर्णन इस तरह है–

1. **ग्रह** – जिस स्वर से किसी राग का गायन–वादन प्रारम्भ किया जाता था, उसे ग्रह स्वर कहा जाता था क्योंकि विशेष स्वर का विशेष नियमित स्वर होता था जिससे गायन या वादन आरम्भ किया जाता था।

2. **अंश** – जिस स्वर का प्रयोग राग में अन्य लगने वाले स्वरों से ज्यादा होता था, उसे अंश स्वर कहा जाता था। आजकल इसी स्वर को वादी स्वर भी कहा जाता है। प्रत्येक राग में वादी स्वर एक ही होता है परन्तु विशेष राग में अंश स्वर एक या एक से अधिक भी होते थे।

3. **न्यास** – जिस विशेष स्वर से किसी विशेष राग का गायन या वादन समाप्त होता था, उसे न्यास कहा जाता था। न्यास स्वर प्रत्येक विशेष राग का निश्चित होता था।

4. **अपन्यास**– जिस विशेष स्वर पर किसी विशेष राग के (गायन–वादन का) बीच का भाग समाप्त होता था, उसे अपन्यास कहा जाता था। न्यास और अपन्यास में मुख्य अन्तर यह था कि न्यास स्वर पर पूरे गायन–वादन की समाप्ति होती थी जबकि अपन्यास में राग के भिन्न–भिन्न भागों का गायन–वादन समाप्त होता था।

5. **अल्पत्व–बहुत्व**– जिन विशेष स्वरों का प्रयोग विशेष रागों में कम किया जाता है, उसको अल्पत्व और जिनका प्रयोग अधिक किया जाता है, उसे बहुत्व कहा जता है। ये दोनों क्रियाएं दो तरह से की जाती हैं।

अल्पत्व

लंघन अनभ्यास

लंघन अल्पत्व– लंघन का भाव उस विशेष स्वर से है, जिसका प्रयोग राग में होता तो हो परन्तु कम होता हो इसलिए ऐसे स्वर का यदि आरोह में अल्पत्व हो तो आरोह में छोड़ दिया जाता है और यदि अवरोह में अल्पत्व हो तो अवरोह में छोड़ दिया जाता है। यहां पर यह प्रश्न उठता है कि इनको उस राग के वर्जित स्वर क्यों नहीं कहा जाता। वर्जित स्वरों का प्रयोग तो उन रागों में किया ही नहीं जाता जिनके वह वर्जित स्वर होते हैं : परन्तु लंघन स्वरों का प्रयोग राग को पेश करते समय कभी–कभी किया जाता है।

अनाभ्यास अल्पत्व – इन स्वरों को राग के आरोह–अवरोह में प्रयोग तो किया जाता है परन्तु उन पर न्यास नहीं किया जाता।

बहुत्व

आलंघन बहुत्व अभ्यास बहुत्व

आलंघन बहुत्व– जिस विशेष राग में उस विशेष स्वर का प्रयोग आवश्यक हो अर्थात् उस विशेष स्वर के बिना राग का स्वरुप न बनता हो, ऐसे स्वर का स्थान उस राग में आलंघन बहुत्व होता है। उदाहरण के लिए जौनपुरी राग में निषाद का आलंघन बहुत्व है क्योंकि यदि निषाद का प्रयोग नहीं किया जाएगा तो इसके समप्रकृतिक राग में आसावरी की छाया आएगी।

अभ्यास बहुत्व– इस स्वर से भाव उस स्वर से है जिसका प्रयोग राग को गाते–बजाते समय बार–बार किया जाता है और बार–बार घूमकर इस स्वर पर आकर न्यास किया जाता है।

6. **षाडवत्व**– षाडवत्व का अर्थ है छः। जिन रागों के आरोह–अवरोह में छः स्वर लगते हों, उनको षाडव जाति का राग कहा जाता है।

7. **औडवत्व**– औडवत्व का अर्थ है पांच। जिन रागों के आरोह–अवरोह में पांच–पांच स्वर लगते हों, उसे औडव औडव जाति का राग कहा जाता है।

8. **मंद्र–** मंद्र से भाव मंद्र सप्तक से है। मंद्र स्थान से भाव है कि विशेष राग का प्रयोग मंद्र सप्तक में करना है।

9. **तार–** तार से भाव तार सप्तक से है अर्थात् विशेष राग का प्रयोग तार सप्तक में करना है।

रुपकालाप – इसमें रागालाप के सारे लक्षणें का पालन किया जाता है। इसके अलावा प्रबंध के धातुओं की तरह इसके खण्ड करने पड़ते हैं। रुपकालाप में रागालाप की तरह राग से पहले राग के वर्णन की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि यह तो अपने आप ही ठोस प्रमाण था। रुपकालाप में न तो गीत के बोल होते हैं और न ही यह ताल में बंधा होता था। प्रबन्ध–गायन और रुपकालाप में अन्तर केवल यह है कि प्रबंध–गायन में गीत के बोल होते थे और यह ताल में बंधा हुआ होता था।

आलप्तिगान गायन – इसमें राग के स्वरुप को पूर्ण तौर से स्पष्ट किया जाता है। इसमें तिरोभाव–आविर्भाव, अल्पत्व–बहुत्व आदि की क्रियाओं को विशेष महत्व दिया जाता था। संगीत रत्नाकर के अनुसार राग में आलाप को आलिप्त गायन कहते थे। आलिप्त का शब्दकोशीय अर्थ है– राग के रुप को विस्तार से प्रकट करना। इसमें आलाप के स्वर स्थान नियमों का भी पालन किया जाता था।

स्वर–स्थान नियम का आलाप – प्राचीन काल में आलाप गायन का एक विशेष नियम निश्चित था, जिसको स्वर–स्थान कहते थे। गायक को स्वर–स्थानों के नियमों के अनुसार ही आलाप करना पड़ता था। उन नियमों को चार भागों में बांटा गया। संगीत रत्नाकर में इसका वर्णन इस तरह है।

1. पहले स्वर स्थान में द्वयर्ध स्वरों के नीचे स्वरों तक ही आलाप करना पड़ता था परन्तु मंद्र सप्तक में इच्छानुसार विस्तार किया जा सकता था (द्वयर्ध स्तर से अभिप्राय वादी के चौथे स्वर से है, अर्थात् संवादी ही समझा जाए)
2. दूसरे स्वर–स्थान में द्वयर्ध स्वर तक आलाप किया जाता था।
3. तीसरे स्वर–स्थान में अर्धस्थिति स्वर तक आलाप किया जाता था। द्वयर्ध और द्विगुणा के बीच के भाग को अर्धस्थित कहा जाता था।
4. चौथे स्वर स्थान नियम में द्विगुण और उसके ऊपर तक के स्वरों में आलाप करने के बाद स्थाई पर न्यास किया जाता था। (द्विगुण वादी स्वर से आठवें स्वर को कहते हैं)
   आजकल इन स्वर स्थान–नियमों का पालन आलाप में नहीं किया जाता।

3.4.2 आधुनिक आलाप गायन एवं इसके प्रकार – भारतीय राग का आधार आलाप है। इसके मुख्य राग के स्वरुप को स्पष्ट करना होता है। आलाप को मुख्य रुप से दो भागों में बांटा जा सकता है।

1. विस्तार की दृष्टि से 2. राग की प्रवृत्ति की दृष्टि से

विस्तार की दृष्टि से इसको आगे चार भागों में बांटा जा सकता है–

1. औचार आलाप– इसमें आलाप के कठोर नियमों का पालन किया जाता था। इसमें राग का परिचय मात्र ही दिखाया जाता था।
2. बंधन आलाप– परम्परागत बंदिशों में बंधी हुई तानों के साथ आलाप किया जाता था।
3. कैद आलाप– इसमें एक–एक स्वर को केंद्रित मानकर तानें ली जाती हैं।
4. विस्तार आलाप–इसमें बंधी हुई तानों की कोई सीमा नहीं होती।

प्रवृत्ति की दृष्टि से ध्रुपद अंक की वाणियों का प्रयोग किया जाता है। गायन आलाप मुख्य दो ढंगों से किया जाता है।

1. आकार द्वारा 2. नोम्तोम् द्वारा

नोमतोम का आलाप अधिकतर ध्रुपद शैली से पहले किया जाता है जबकि आकार के आलाप का प्रयोग ख्याल, ठुमरी आदि में किया जाता है। प्रत्येक शैली के आलाप में विशेष नियमों का पालन करना पड़ता है जैसे ध्रुपद और धमार शैली में आलाप आरम्भ में ही किया जाता है। इसके बाद स्थाई अन्तरा संचारी आभोग गाया जाता है। आलाप के पहले भाग में एक–एक स्वर का आलाप कण और मींड द्वारा किया जाता है। दूसरे चरण में गायक स्वरों को क्रमानुसार मींड और गमक के साथ लययुक्त आलाप करते हुए स्वरों की बढ़त करते हैं। तीसरे चरण में लय और बढ़ा दी जाती है। इसमें मींड और गमक के विभिन्न प्रकारों का प्रयोग किया जाता है।

आधुनिक युग में गायक विशेष राग का परिचय कराने के लिए उस राग में विशेष स्वर–समूह लगाकर झट से बंदिश गाना शुरु कर देते हैं। गीत के स्थाई और अन्तरा कहने के बाद जो वह आलाप करते हैं, उसमें गीत या बंदिश के बोलों को लेकर करते हैं, उसको बोल आलाप कहा जाता है। आधुनिक युग में बोल आलाप का ही अधिक प्रचार है। यदि यह कहा जाए कि बोल आलाप ने आलाप का स्थान ले लिया है तो निराधार नहीं। क्योंकि बोल आलाप में आलाप के सारे गुणों का समावेश किया जा रहा है।

ख्याल शैली में आलाप – ख्याल तीन तरह के होते हैं–

1. विलम्बित, 2. मध्य और 3. द्रुत।

विलम्बित ख्याल में आलाप अधिक खिलता है क्योंकि उसमें एक–एक स्वर की बढ़त उचित ढंग से की जा सकती है। क्रियात्मक संगीत की क्रियाएं जैसे मींड, खटका, कण, गमक आदि का प्रयोग आलाप में उचित ढंग से किया जा सकता है। ख्याल में आलाप का प्रयोग अलग–अलग घराने वाले अलग–अलग ढंग से करते हैं जैसे किराना घराने के गायक केवल स्थाई कहकर ही आलाप करते हैं जबकि आगरा घराने के गायक स्थाई अन्तरे के बाद ध्रुपद अंग से आलाप करते हैं।

ठुमरी गायन में आलाप – ठुमरी में आलाप के स्थान पर बोल बनाव किया जाता है। इसमें बोलों के भावों को विभिन्न सांगीतिक क्रियाएं जैसे कण, खटका, मुर्की, हूक, पुकार आदि द्वारा प्रकट किया जाता है। ठुमरी के बोल बनाव के लिए कोमलता, भावुकता, रंजकता आदि की बहुत आवश्यकता होती है।

अन्य शैलियों में आलाप गायन – शास्त्रीय संगीत गायन शैलियों के अलावा अन्य शैलियों जैसे लोक संगीत सुगम और चित्रपट संगीत में भी आलाप करने की प्रथा है। जैसे कि पहले बताया जा चुका है कि आधुनिक युग में बोल आलाप का अधिक प्रचार है इसलिए इन शैलियों में भी बोल आलाप का प्रचार हो रहा है। वर्तमान समय के आलाप में प्राचीन काल की विशेषताएँ नहीं पाई जातीं। आज के अधिकांश आलापों में गहराई कम है। आज भाव–पक्ष की अपेक्षा कला–पक्ष की ओर अधिक झुकाव होता जा रहा है। फिर भी वर्तमान कालाकरों में पं0 भीमसेन जोशी, डागर–बंधु, पं0 रविशंकर, निखिल बनर्जी, श्रीमती एन0 राजम्, पं0 राम नारायण आदि गायकों–वादकों को स्वर–विस्तार काफी प्रभावपूर्ण होता है। घरानों में आगरा–घराने का आलाप अधिक प्रभावपूर्ण माना जाता है। आज आलाप में चमत्कार की अपेक्षा भाव–पक्ष पर जोर देना अधिक आवश्यक है, क्योंकि आलाप ही राग का रुप व इसकी आधार–शिला का निर्माण करता है। राग का सौंदर्य काफी हद तक इसी पर निर्भर करता है।

वर्तमान गायन के क्षेत्र में बोल–आलाप का प्रयोग अधिक हो रहा है। यदि यह भी कहा जाए कि बोल–आलाप ने ही आज के युग में आलाप का स्थान ग्रहण कर लिया है तो अतिशयोक्ति न होगी। बोल–आलाप में ही आलाप के सभी गुणों का प्रयोग कर दिया जाता है, जो सचमुच ही सौंदर्य–सृष्टि करता है। बंदिश के अन्तर्गत किया जाने वाला यह आलाप बंदिश की लय के अनुकूल विलंबित लय में किया

जाना चाहिए, जिससे राग का स्वरुप प्रस्फुटित हो सके। मधुर आवाज द्वारा आलाप में जिन शब्दों का उच्चारण किया जाए वे शुद्ध और स्पष्ट हों, साथ ही लय का सुंदर समन्वय भी हो, तो क्या ऐसा आलाप रस–सृष्टि नहीं कर सकता? अवश्य कर सकता है। परंतु आजकल के अधिकतर गायक इस बात को भूल जाते हैं कि उनके राग–प्रदर्शन का मुख्य उद्देश्य सौंदर्य–सृष्टि है।

आलाप के महत्वपूर्ण सैद्धांतिक तत्व – राग की सारी सुन्दरता उसमें लगने वाले स्वरों पर निर्भर होती है। राग को प्रस्तुत करने से पहले गायक या वादक के मन में सूक्ष्मता का रुप होता है। इसके आधार पर ही मधुरता, अखंडता, कोमलता और रंजकता आदि के तत्वों का ढांचा टिका हुआ होता है। जो गायक कलाकार राग में लगने वाले स्वरों को विशेष क्रियाओं से आलंकृत करके, राग का स्वरुप विशेष ढंग द्वारा पेश करते हैं, उनके आलाप को ही उत्तम कहा जाता है। आलाप पेश करने के लिए सबसे पहले स्वर–ज्ञान होना बहुत जरुरी है। आरम्भिक विद्यार्थियों को मात्रा से बंधा हुआ आलाप ही सिखाना चाहिए। क्योंकि उनको राग के विशेष स्वरों और ताल का अधिक ज्ञान नहीं होता। जब विद्यार्थियों को इसका अभ्यास हो जाए तब उनको गुरु द्वारा सिखलाया आलाप ही करना चाहिए क्योंकि गुरु द्वारा सिखलाई विधि को विद्यार्थी सुनकर कण्ठ की नकल करके आलाप की रीति को समझ लेता है। इसके बाद धीरे–धीरे खुला आलाप करने के योग्य हो जाता है।

आलाप को उत्तम बनाने के लिए कण, खटका, मुर्की, मींड, गमक आदि का अभ्यास होना जरुरी है। आलाप में हर स्वर को बार–बार विभिन्न ढंगों से पेश करने को बढ़त कहते हैं। आलाप में बढ़त का ढंग सीखने के लिए यह जरुरी है कि मध्य सप्तक के षड्ज का प्रयोग उस विशेष राग में लगने वाले निकटतम स्वरों से किया जाए। उसके बाद उसके बाकी स्वरों का प्रयोग करना चाहिए और फिर उसके बाद यही क्रिया अवरोहात्मक ढंग से करनी चाहिए। गायक बढ़त करने में उतना ही कुशल माना जाएगा, जितनी देर लगाकर वह अगले स्वर का प्रयोग करेगा। आलाप में हर स्वर का उचित स्थान, उचित ढंग और सही लगाव होता है। इनको सिखाने के लिए योग्य गुरु और अभ्यास की जरुरत होती है।

राग–गायन प्रस्तुत करने से पूर्व गायक राग के स्वरुप या यों कहिए कि श्रोताओं का अपने राग से परिचय करवाने के लिए कुछ विशिष्ट स्वर–समुदाय को आकार अथवा 'ता, ना, न, रे' द्वारा प्रस्तुत करके तुरंत ही बंदिश गाना प्रारंभ करते हैं, जिसके साथ ताल भी प्रारंभ हो जाती है। बंदिश की स्थायी गा लेने के पश्चात् आलाप करना प्रारंभ करते हैं। परंतु वह आलाप प्रायः गीत या बंदिश के शब्दों को लेकर किया जाता है, जिसे बोल–आलाप कहा जाता है। गायन में आजकल बोल–आलाप का ही अधिक प्रचलन है। सच ही तो है, केवल राग में प्रयुक्त होने वाले स्वरों को निरर्थक अक्षरों ('ता, ना ना, रे') द्वारा आलाप करने से क्या भाव की संपूर्ण अभिव्यक्ति हो सकती है? क्या संपूर्ण रस–सृष्टि संभव है? कुछ सीमा के पश्चात् यह संभव नहीं हो सकता है। अतः राग–गायन द्वारा भाव–प्रकाशन के लिए गीत के बोलों पर भी ध्यान देना आवश्यक है और यह बंदिश के बोलों (बोल–आलाप) को भावपूर्ण ढंग से कल्पना–शक्ति द्वारा विभिन्न स्वर–समुदायों में पिरोकर आलाप करने में ही संभव है। आचार्य बृहस्पति ने भी कहा है– ''राग में भाव–प्रकाशन की शक्ति सीमित है, परंतु है अवश्य। केवल राग से हम भाव–विशेष की सृष्टि तो कर सकते हैं, परंतु भाव का उतना परिपाक केवल इससे संभव नहीं, जिससे हम रसानुभूति की अवस्था तक पहुँच सकें। भाव–बोधन में भाषा का संयोग राग की सीमित शक्ति को अपना अंग बनाकर अपने बल में वृद्धि करता है और राग गीत का अनिवार्य अंग बनकर रस–परिपाक में एक सुंदर उपकरण बन जाता है।''

अभ्यास प्रश्न

1. लघु उत्तरीय प्रश्नः–

(क) आलाप को राग का आधार स्तम्भ कहा जाता है, व्याख्या कीजिए ?

(ख) वर्तमान समय में आलाप गायन किस विधि से किया जाता है ?

(ग) प्राचीन रुपकालाप का संक्षिप्त विवरण दीजिए ?

2. एक शब्द में उत्तर दोः–

(क) राग गायन में सबसे महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ किसे कहा जाता है?
(ख) प्राचीन रागालाप में राग के कितने लक्षणों का स्पष्ट रुप से प्रयोग होता था?
(ग) प्राचीन समय में आलाप गायन में राग का प्रारम्भ किस स्वर से होता था?
(घ)संगीत रत्नाकर में राग के आलाप को किस नाम से सम्बोधित किया गया है?

3. बहुविकल्पीय प्रश्नः–

(क) ध्रुपद गायन में आलाप होता है।
(1) सरगम (2) नोम्तोम् (3) आकार
(ख) प्राचीन आलप्तिगान में निम्न क्रिया की जाती है।
(1) आर्विभाव तिरोभाव (2) बोल आलाप (3) औचार आलाप
(ग) राग के प्रस्तुतिकारण में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका रखता है।
(1) स्वर सौन्दर्य (2) आलाप गायन (3) तान

3.5 तान

तान शब्द का अर्थ है बढ़ाना या फैलाना। दूसरे अर्थों में इसको विस्तार भी कहा जा सकता है क्योंकि इसके द्वारा राग वाचक स्वर समूहों का द्रुत लय में अखंडित रुप में उच्चारण किया जाता है। राग में लगने वाले स्वरों का विस्तार जल्द या द्रुतलय में करना तान कहलाती है। यदि आलापों को द्रुतलय में गाया अथवा बजाया जाय तो वे ही तान कहलायेगी। आलाप और तानों में अन्तर लय का है। आलाप धीमी लय में होते हैं तथा भाव प्रधान होते हैं। तान जल्द लय में होती है तथा चमत्कार और कला प्रधान होती है। तानों के लिए अभ्यास की आवश्यकता अधिक होती है। इनको कहने के लिये राग के चलन के साथ राग के वादी संवादी तथा वर्ज्यावर्ज्य स्वरों का ध्यान रखना पड़ता है। तानों में लय का महत्व अधिक है। इसलिये दुगुन, तिगुन, चौगुन, अठगुन आदि विभिन्न लयों में तानें की जाती हैं।

किसी भी राग में तान उच्चारण करने के लिए उस राग के वादी–संवादी, आरोह–अवरोह और वर्जित स्वर, राग का विशेष चलन आदि की तरफ विशेष ध्यान रखना पड़ता है। इन तत्वों का ध्यान तो आलाप बंदिश में भी रखना पड़ता है परन्तु तानों में विशेष नियमों का पालन करते हुए विभिन्न लयकारियाँ, जिससे सुन्दरता, विचित्रता आदि पैदा होती है, का विशेष महत्व दिखलाया जाता है। उत्तरी भारत में शास्त्रीय संगीत के अंतर्गत चार प्रमुख गायन शैलियां प्रचलित हैं जैसेः– ध्रुपद, ख्याल, टप्पा, ठुमरी आदि।

तानों का प्रयोग टप्पा, ठुमरी आदि गायन–शैलियों में ही किया जाता है। ध्रुपद में तानों का प्रयोग नहीं किया जाता। ध्रुपद के तीसरे और चौथे चरण में नोम्तोम् के आलाप में केवल गमक तान का ही प्रयोग किया जाता है और तानों का प्रयोग ध्रुपद में नहीं होता।

3.5.1 **राग सौन्दर्य में तान** – भाव–प्रदर्शन में गायक या वादक अपने हद्यगत भावों पर आश्रित रहता है, अर्थात् कल्पना शक्ति द्वारा हद्य उठते भावों को स्वरों और शब्दों के माध्यम से व्यक्त करता है। इसी को काव्य–शास्त्रीय भाषा में 'रससृष्टि' कहा जाता है। इसी तरह कला–प्रदर्शन में गायक या वादक बुद्धि का भी प्रयोग करता है, अर्थात् बुद्धि द्वारा चमत्कार–प्रदर्शन करके आनंद प्रदान करता है। परंतु भाव तथा कला, ये दोनों ही एक–दूसरे पर आधारित हैं। न कोरी भावुकता ही भावाभिव्यक्ति करा सकती है और न कोरी

कलाबाजी से ही रससृष्टि संभव है। दूसरे शब्दों में, भावपक्ष संगीत का आंतरिक पक्ष है और कलापक्ष बाह्य।

यदि हम आलाप को संगीत के भावपक्ष तथा तान को कलापक्ष से जोड़ें, तो यह अनुचित न होगा। राग–गायन में आलाप के अंतर्गत भाव–प्रदर्शन की प्रमुखता रहती है, जिसका संबंध हद्य से होता है और तान के अन्तर्गत कलापक्ष या चमत्कार–प्रदर्शन का प्राधान्य रहता है, जो बुद्धि से संबंध रखता है।

तान का प्रयोग उचित मात्रा में ही होना चाहिए, जिससे केवल कलाकारिता ही नहीं, सौंदर्य–बोध में भी वह सहायक सिद्ध हो सके। अति हो जाने पर ही रसात्मकता में बाधा आने लगती है। तान का विवरण देते हुए पं0 भातखंडे ने कहा है– ''तानों का मुख्य प्रयोजन गायन का वैचित्रत्य अधिकाधिक बढ़ाना है। तानें यदि योग्य रीति से व योग्य प्रमाण से ली जाएँ, तो सुननेवालों को सचमुच बड़ा आनंद आता है, जैसे कोई प्रसिद्ध वक्ता एक ही कल्पना भिन्न–भिन्न शब्दो से व भिन्न–भिन्न ध्वनियों तथा हाव–भावों से अपने श्रोताओं के सम्मुख रखकर उत्तम रीति से उनके मन पर प्रभाव डालता हुआ अपना इष्ट कार्य साधता है, उसी प्रकार उत्तम गायक भिन्न–भिन्न स्वर–समुदायों से व भिन्न–भिन्न शब्द–रचनाओं से अपनी चीज की भावना की छाप श्रोताओं के मन पर बैठाता है। मुख्य चीज को शोभा देने वाली तानें ली जाएँ, तो बहुत ही आनंद आता है।''

आजकल कलाकार तानों में पुनरावृत्ति बहुत करते पाए जाते हैं। परंतु तान द्वारा आनंद प्रदान करने के लिए इस बात पर भी ध्यान रखना चाहिए कि तानों में वे नवीनता पैदा करें। इसके साथ ही राग के स्वरुप को देखते हुए, उसकी प्रकृति पर दृष्टि रखते हुए तदनुकूल तानें गाई–बजाई जानी चाहिए। आलाप के तुरंत पश्चात् एकाएक द्रुततानों पर टूट पड़ना रस–सृष्टि की दृष्टि से अनुचित है। इस दृष्टि से छोटे ख्याल की गति चपल होने के कारण उसमें चपल तानों का प्रयोग भला प्रतीत होता है। कंठ में मधुरता हो और सरल तानों को अत्यंत सरलता से सुर में गाया जाए, तो सचमुच ही आनंद आता है। पं0 जगदीशनारायण पाठक के शब्दों में–''यदि सरल तानों द्वारा कंठ में मधुरता और सरलता ने स्थान बना लिया है तो गमक की तान हदृय में इस प्रकार चलती है, जैसे जल में मस्त होकर मगर तैरता हो और तान का प्रत्यक्ष आनंद इस प्रकार होता है, जैसे कि जल–प्रपात की घोर–गर्जना और जल का कल–कल निनाद हो।''

3.5.2 तान के प्रकार – तानों के अनेक प्रकार हैं जैसे–आलंकारिक तान, गमक तान, कूट तान, मिश्र तान, छूट तान, जबड़े की तान, फिरत तान, दानेदार तान, हलक तान, झटके की तान, खटके की तान, बोल तान, सपाट तान, टप्पे अंग की तान, मूर्छना की तान, चक्की तान, तलवार की तान, उखाड़–पछाड़ की तान, लड़त तान, पलट तान, सरगम तान, अचरक तान, वक्र तान, सरोक तान आदि।

आलंकारिक तान – जो तानें अलंकारों के आधार पर उच्चारी जाती हैं, उनको आलंकारिक तान कहा जाता है। इनमें अलंकारों की तरह आरोह और अवरोह के स्वरों का क्रम एक जैसा होता है। जैसे सा रे ग म प ध नि सां, सां नि ध प म ग रे सा आदि। इन तानों का प्रयोग सम्पूर्ण जाति वाले रागों में बहुत अच्छी तरह से होता है, जबकि वक्र जाति वाले रागों में कुछ विशेष अलंकारों का ही प्रयोग किया जा सकता है। ये तानें सुनने में बहुत अच्छी लगती हैं।

गमक तान – इन तानों में स्वरों को आंदोलित किया जाता है और इन तानों का प्रयोग ध्रुपद गायकी में विशेष तौर पर नोम्तोम् के आलाप में किया जाता है। इन तानों का प्रयोग उन रागों में भी किया जाता है जो गमक प्रधान राग होते हैं, जैसे मेघ मल्हार आदि।

कूट तान – मतंग के समय में दो प्रकार की तानों का उल्लेख मिलता है–शुद्ध और कूट तान। क्रम लंघन स्वर विन्यास को कूट तान कहा जाता है। दूसरे अर्थों में जिसमें तान के स्वर क्रम अनुसार नहीं होते अर्थात् जिनका क्रम टेढ़ा होता है उन्हें कूट तान कहा जाता है। ऐसी तानों को गाने के लिए बहुत अभ्यास की आवश्यकता होती है क्योंकि इसमें गले की हेरफेर बहुत होती है, जैसे रे ग रे म ग रे म ग आदि।
मिश्र तान – इस तान में शुद्ध और मिश्र तान का मिश्रण होता है जैसे– रे ग रे, म ग रे सा। इसमें पहला स्वर समूह चक्र है और दूसरा सपाट है।

छूट तान – इस तान में विशेष राग के विशेष स्वर से जल्दी वापस आते हुए सपाट तान उचारी जाती है जैसे– रे नि ध प म ग रे स। इस तान के उच्चारण के लिए बहुत अभ्यास की आवश्यकता होती है क्योंकि गाते समय एकदम से सपाट स्वरों को अवरोहात्मक ढंग से लगाना मुश्किल होता है।

जबड़े की तान – इस तान को जबड़े की सहायता से गाया जाता है। जबड़े की तान कोई विशेष तान नहीं होती बल्कि किसी भी तान को जब जबड़े की सहायता के साथ गाया जाता है तो उसे जबड़े की तान कहा जाता है।

फिरत तान – इस तान के नाम से ही स्पष्ट होता है कि इसमें स्वरों को घुमाया–फिराया जाता है जैसे– प म ध प म ध प म ग रे ग प आदि।

दानेदार तान – इस तान में कण का प्रयोग किया जाता है। विशेष राग में विशेष स्वर पर विशेष स्वर का कण लगाने के लिए तान का विशेष प्रयोग किया जाता है।

हलक तान – इस तान के उच्चारण के लिए जीभ की सहायता विशेष रुप से ली जाती है।

झटके की तान – झटके की तान वह होती है जब पेश की जा रही लय को छोड़कर एकदम से चौगुनी व अठगुनी लय दिखाई जाए।

खटके की तान – इस तान में कणयुक्त स्वरों का प्रयोग किया जाता है। इस तान में एक स्वर पर दूसरे स्वर के कण का विशेष रुप से प्रयोग किया जाता है।

बोल तान – आधुनिक युग में बोल तान का बहुत प्रचार है। इस तान में विशेष राग के स्वरों का उच्चारण नहीं किया गया बल्कि बंदिश के बोलों को तान की तरह प्रयोग किया जाता है।

टप्पे की तान – इन तानों का प्रयोग टप्पा गायन शैली में विशेष रुप से किया जाता है। इनको गाने के लिए गले की विशेष तैयारी चाहिए। इसमें खटका मुर्की कण का विशेष रुप से प्रयोग किया जाता है।
टप्पे अंग की तानः–
सा रे सा रे सा रे सा नि, म म ग म ग रे म म ग रे सा रे सा नि सा आदि।

वक्र तान – इस तान में स्वरों का चलन वक्र रुप से किया जाता है। जिन रागों का चलन वक्र होता है उनमें वक्र तान का प्रयोग विशेष रुप के साथ किया जाता था।

सरगम तान – जिस तान में विशेष राग में प्रयोग होने वाले स्वरों का उच्चारण आकार द्वारा या बोलों द्वारा न किया जाए बल्कि स्वरों को गाया जाए, उसे सरगम तान कहा जाता है।

लड़त तान – इस तान में कई लयकारियां प्रकट की जाती हैं। इसमें गायक और वादक बढ़–चढ़ कर अपनी कला दिखाते हुए विभिन्न लयकारियों को पेश करते हैं। इन वर्णित तानों के अलावा और भी कई तानें होती हैं जिनमें संगीत की विशेष क्रियाओं जैसे–गिटकरी, गमक, कण आदि का विशेष रुप से प्रयोग किया जाता है, वह ताने केवल बहुत अभ्यास के साथ ही आ सकती हैं।

तान रचना विधि – आरंभिक विद्यार्थी को पहले गुरु के द्वारा सिखाई साधारण तानों का ही प्रयोग करना चाहिए। परन्तु धीरे–धीरे विद्यार्थी को राग के विशेष चलन, तानों के उचित नियमों के प्रयोग के बारे में जानकारी हो जाती है तो वह तानों की रचना आप भी कर सकते हैं। तानों में लयकारी का विशेष महत्व है।

उत्तम तानों के सिद्धांत – आरंभिक विद्यार्थी को पहले चार वर्णो (स्थाई वर्ण, आरोही वर्ण, अवरोही वर्ण, संचारी वर्ण) के अलंकारों का अभ्यास होना चाहिए ताकि विद्यार्थी का गला स्वरों के उचित स्थान के उच्चारण में पक्का हो सके। इन अलंकारों को पहले ठाह लय में फिर दुगुन और चौगुन, अठगुन लय में करवाया जाय।

आरंभ में केवल छोटी–छोटी तानों का ही अभ्यास कराया जाए। बाद में बड़ी तानें विद्यार्थी अपने आप गाने में समर्थ हो जाता है। तान का अभ्यास पहले कम लय में किया जाए ताकि स्वरों और क्रियाओं का उचित प्रयोग हो सके। तानों की संख्या तब ही बढ़ाई जाए जब पहली तानों पर पूरा अभ्यास हो जाए। अभ्यास के लिए अर्थात् गले की विशेष हरकत के लिए सपाट तान का अपना अलग ही योगदान होता है। अवरोहात्मक क्रम में सपाट स्वरों का उच्चारण मुश्किल लगता है क्योंकि इस क्रम में कंठ पर काबू तब ही हो सकता है, जब स्वरों का पूर्ण ज्ञान हो। ऐसी तानों में लयकारी धीरे–धीरे बढ़ानी चाहिए और साथ ही साथ सपाट स्वरों का अभ्यास मध्य षड्ज से लेकर तार षड्ज तक न किया जाए बल्कि पहले षड्ज से लेकर **म** तक एक पड़ाव देकर अभ्यास करने के बाद तार षड्ज तक पहुंचा जाए।

तान का अभ्यास करते समय षड्ज या राग में लगने वाले विशेष आरंभिक स्वर जैसे कल्याण में नि आदि से न किया जाए बल्कि ऋषभ से लेकर तार सप्तक के ऋषभ तक, गंधार से लेकर तार सप्तक के गंधार तक इत्यादि तानों का अभ्यास किया जाए, जिससे विद्यार्थी को स्वरों का बहुत पक्का अभ्यास हो जाएगा। इससे उसको किसी भी स्वर को सा मानकर गाने का अभ्यास हो जाएगा। मूर्च्छना पद्धति में भी ऐसा होता है। जब विद्यार्थी किसी भी स्वर को सा मानकर आरोह–अवरोह करेगा तब स्वरों के स्थानों में अंतर आना स्वाभाविक है। चाहे उसने उच्चारण तो सा रे ग म प ध नि आदि का ही किया है परन्तु हर बार षड्ज बदलने से मूल स्वर समूह में अंतर आ जाएगा। जिससे विभिन्न स्वरों के उच्चारण में फिर कोई मुश्किल नहीं आएगी।

आरंभ में ऐसे रागों की तानें करवानी चाहिए जिनमें शुद्ध स्वर प्रयोग हो, जिनका चलन सरल और सीधा हो और जिनमें संवाद ज्यादा हो, जैसे कल्याण राग इत्यादि इसमें तीव्र मध्यम के अलावा बांकी सभी स्वर शुद्ध लगते हैं और इसका चलन भी सीधा है। ऐसे रागों में तानों की तैयारी के बाद फिर किसी और राग की तानें की जाए। पहले वक्र जाति वाली रागों की तानों की तैयारी न की जाए। पहले औड़व जाति के सरल रागों की तानें जैसे भूपाली, देशकार इत्यादि रागों में ही उच्चारी जाए क्योंकि शुद्ध स्वरों पर काबू के बाद ही कोमल स्वर उच्चारण में सफलता मिलेगी। बोल तानों को गाने के लिए पहले बंदिश के बोलों का अभ्यास सरगम पर ही किया जाए बाद में बंदिश के बोलों की तान अर्थात् बोलतान या आकार के द्वारा तान का अभ्यास किया जाए।

आदत, जिगर, हिसाब वैसे तो इन तीनों का प्रयोग संगीत के हर पहलू में रहता है परन्तु तानों में इस संबंध में विशेष चौकन्ने रहना पड़ता है जैसे विशेष लयकारी के लिए उत्तम अभ्यास अर्थात् आदत, स्वरों और क्रियाओं का उचित प्रयोग अर्थात् जिगर और मात्राओं की विशेष गिनती अर्थात् हिसाब। उत्तम

तानों के लिए गायक के विशेष गुण जैसे–बैठने का उचित ढंग, जिससे फेफड़ों में कोई रुकावट न हो और चेहरे पर भाव पेश करने का ढंग आदि होना भी आवश्यक है। स्वर लय और ताल की विशेष जानकारी आत्मविश्वास आदि तत्वों का ध्यान रखना जरुरी है क्योंकि ऐसे तत्वों के बिना तानों का उचित रुप से उच्चारण नहीं किया जा सकता, जिसके फलस्वरुप गायक अपने गायन से इसकी उत्पत्ति करने में असमर्थ हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न

1. सत्य असत्य बताइएः–

(क) तानों का प्रयोग राग में चमत्कारवर्द्धक होता है।
(ख) राग गायन में तान का प्रयोग बहुत अधिक मात्रा में होना चाहिए।
(ग) ध्रुपद गायन में मात्र गमक तानों का प्रयोग होता है।
(घ) मिश्र तान में शुद्ध एवं मिश्र तान का मिश्रण रहता है।

2. लघु उत्तरीय प्रश्नः–

(क) कूट तान के प्रकार के विषय में संक्षेप में व्याख्या कीजिए ?
(ख) राग गायन में तानों का प्रयोग किस प्रकार होना आवश्यक है ?

3. बहुविकल्पीय प्रश्नः–

(क) निम्नलिखित में कौन सा विकल्प तानों के प्रकार के अन्तर्गत नहीं है।
(1) बोलतान (2) कूट तान (3) अन्तरातान
(ख) तान के द्वारा राग के स्वरुप में निम्न की वृद्धि होती है वह है।
(1) चमत्कार (2) गम्भीरता (3) मधुरता
(ग) तानों के प्रारम्भिक अभ्यास में निम्न में से कौन सा राग उत्तम रहता है।
(1) यमन (2) भटियार (3) मारवा

3.6 सारांश

आलाप राग का आधार–स्तंभ है। इसी पर राग–रुपी भवन टिका रहता है। राग की आकृति बनी–बनाई नहीं होती, धीरे–धीरे बनती चली जाती है। जब एक–एक स्वर–रुपी ईट को कलाकार बढ़ाते जाते हैं, तो राग–रुपी भवन का निर्माण होता चला जाता है। आलाप राग का परिचय कराता है। वह एक साधारण–सी संगीतात्मक सीढ़ी है, जिसमें कलाकार एक–एक स्वर को लेकर आगे बढ़ता जाता है, ताकि राग के रुप को साकार कर सभी के तथा अपने भावों, विचारों को व्यक्त कर सके। अनिबद्ध भाव से एक राग के स्वर–विस्तार के माध्यम से परिस्फुटित करने को 'आलाप' कहते हैं। 'संगीत–रत्नाकर' के अनुसार, राग के आलाप को 'आलप्ति' कहते हैं। 'आलापन' शब्द का अर्थ है– 'राग को प्रकट करना या विस्तार करना।' तानों का प्रयोग चमत्कारवर्द्धक तो होता ही है, किंतु यह चमत्कार गायक या वादक की सुरीलेपन की सीमा तक ही उत्पन्न किया जाना चाहिए। कोरी तैयारी दिखाने के प्रयास में चीख–भरी बेसुरी तानें प्रस्तुत करना कला के स्तर को गिराना है।

आलाप का प्रयोजन राग की स्थापना है। प्रारम्भिक आलाप से तुरन्त ही राग का सम्पूर्ण अस्तित्व सम्मुख उपस्थित हो जाता है, आलाप को प्रभावशाली बनाने के लिए कुछ बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। आलाप के चार भाग आम तौर पर प्रस्तुत किए जाते हैं, जिनमें कुछ बातों को ध्यान में रखकर विस्तार किया जाना चाहिए। आलाप प्रारंभ करने के बाद 'सा' से खरज के बीच संबंध जोड़े जाने चाहिए। जिस

प्रकार वाक्यों में विराम होता है, उसी प्रकार आलाप में सम दिखानी चाहिए। आलाप को प्रभावशाली बनाने के लिए स्वरों का चमत्कारपूर्ण प्रयोग, सुंदर स्वर–समुदायों का प्रयोग, मुख्य स्वरों को उभारने के लिए कम स्वर, गमक, मीड़ आदि का प्रयोग किया जा सकता है। प्रारंभिक आलाप में राग के वादी स्वर तक ही पहुँचना चाहिए, फिर धीरे–धीरे बढ़ना चाहिए। आलाप जितना सुंदर होगा, राग का रुप उतना ही निखर उठेगा। आलाप में प्रत्येक स्वर का एक अपना सौंदर्य है। आलाप केवल विभिन्न स्वरों का जोड़ नहीं है, वरन् और भी बहुत–कुछ है। गायक–वादक आलाप के माध्यम से बहुत–कुछ व्यक्त कर देते हैं। आलाप एक भावात्मक तत्व है। कलाकार राग का एक चित्र अपने मन में अंकित कर लेते हैं और उसी को स्वरों के माध्यम से साकार करने का प्रयत्न करते हैं। गायन–वादन में आलाप एक–सा ही होता है, अंतर केवल इतना ही है कि गायक का कंठ वाद्य की अपेक्षा अधिक गहरे भावों को व्यक्त कर देता है।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.4 :–

2. एक शब्द में उत्तर दोः–

(क) उत्तरः (आलाप) (ख) उत्तरः (दस) (ग) उत्तरः (ग्रह स्वर) (घ)उत्तरः(आलप्ति)

3. बहुविकल्पीय प्रश्नः–

(क) उत्तरः नोम्तोम् (ख) उत्तरः आर्विभाव तिरोभाव (ग) उत्तरः आलाप गायन

3.5 :–

1. सत्य असत्य बताइयेः–

(क) **(सत्य)** (ख) **(असत्य)** (ग) **(सत्य)** (घ) **(सत्य)**

3. बहुविकल्पीय प्रश्नः–

(क) उत्तरः अन्तरातान (ख) उत्तरः चमत्कार (ग) उत्तरः यमन

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डा0 रेणु राजन, (2010) *भारतीय शास्त्रीय संगीत के विविध आयाम,* अंकित पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
2. डॉ0 भगवन्त कौर, (2002), *परम्परागत हिन्दुस्तानी सैद्धान्तिक संगीत,* कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

3.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डॉ0 सौभाग्य वर्धन बृहस्पति, (2004), *संगीत चिन्तन,* अभिषेक पब्लिकेशन, चंडीगढ़।
2. शान्ति गोबर्धन, (1995), *संगीत शास्त्र दर्पण भाग–2,* पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

(क) राग गायन में आलाप गायन के महत्व को समझाते हुए उसके प्रकारों का वर्णन कीजिए।

(ख) राग–सौन्दर्य में तान की भूमिका का वर्णन करते हुए इसके विविध प्रकारों का सविस्तार वर्णन कीजिए।

इकाई 4 – ध्रुपद और ठुमरी का इतिहास, उत्पत्ति, विकास, वर्तमान स्वरुप एवं घराने

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की प्रमुख गायन शैलियाँ
4.4 ध्रुपद गायन शैली
4.4.1 ध्रुपद का स्वरुप, उत्पत्ति एवं विकास
4.4.2 ध्रुपद के घराने
4.5 ठुमरी गायन शैली का स्वरुप, उत्पत्ति एवं विकास
4.5.1 ठुमरी के घराने (शैली)
4.6 सारांश
4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई प्रदर्शन कला–संगीत में स्नातकोत्तर, तृतीय सेमेस्टर (एम0पी0ए0एम0–201) पाठ्यक्रम चतुर्थ इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकते हैं कि गायन के अन्तर्गत विभिन्न गायन शैलियों के माध्यम से गायक अपना प्रस्तुतिकरण करता है। आप आलाप, तान, बंदिशों एवं स्वर सौन्दर्य एवं विभिन्न गायन विधाओं में इनके प्रयोग के विषय में भी जान गए होंगे।

इस इकाई में ध्रुपद और ठुमरी का इतिहास, उत्पत्ति, विकास, वर्तमान स्वरुप एवं घरानों के बारे में बताया गया है। प्राचीनकाल से वर्तमान समय तक अनेक गायन शैलियों का प्रचलन रहा है। प्राचीनकाल में प्रबन्ध गायन मध्यकाल में ध्रुपद, धमार तथा वर्तमान समय में ख्याल गायन एवं ठुमरी गायन सर्वाधिक प्रचलित रहे हैं। प्रस्तुत इकाई में ध्रुपद और ठुमरी गायन शैलियों के विषय में सविस्तार वर्णन किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप प्रमुख गायन शैलियों के स्वरूप को समझ सकेंगे जिससे प्रयोगात्मक दृष्टि से भी इन्हें सीखना आसान हो सकेगा।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप–

- बता सकेंगे कि राग गायन में विभिन्न गीत विधाओं को कैसे प्रयुक्त किया जाता है।
- समझा सकेंगे कि ध्रुपद और ठुमरी गायन शैलियों में किन प्रमुख विशेषताओं द्वारा अन्तर किया जा सकता है।
- बता सकेंगे कि इन प्रमुख गायन शैलियों को किन संगीतज्ञों द्वारा विशेष स्थान प्राप्त हुआ तथा आश्रय मिला।
- बता सकेंगे कि वर्तमान में इन गायन शैलियों का स्वरूप किस प्रकार गायक प्रस्तुत कर रहे हैं।

4.3 हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की प्रमुख गायन शैलियाँ

संगीत के इतिहास से पता चलता है कि संगीत की दो मुख्य श्रेणियाँ लोक और शास्त्रीय संगीत ही है। परन्तु इनके मिश्रण से या थोड़ा परिवर्तन करके उप शैलियाँ जैसे उपशास्त्रीय संगीत का प्रचार भी किसी न किसी रूप में होता रहा है। इनका सम्बन्ध लोक और शास्त्रीय संगीत परम्परा से जुड़ा चला आ रहा है। प्राचीनकाल से ही शास्त्रीय संगीत का पुरातन पक्ष चला आ रहा है। इसके अन्तर्गत विभिन्न गायन शैलियों की परम्परा को देखा जा सकता है। जैसे प्राचीनकाल में प्रबन्ध, मध्यकाल में ध्रुपद, धमार, टप्पा तथा आधुनिक काल में ख्याल, ठुमरी आदि का प्रचलन है।

4.4 ध्रुपद गायन शैली

ध्रुपद भारतवर्ष की एक उत्तम और प्राचीन गायन शैली है। ध्रुपद शब्द ध्रुव एवं पद इन दो शब्दों से मिलकर बना है। ध्रुव का अर्थ है अटल, दृढ़ या स्थायी और पद से अर्थ है साहित्य। ऐसे गीत जो विशेष नियमों से बंधे होते थे तथा स्वर, पद (या साहित्य) और ताल में बंधे होते थे और जिनमें किसी प्रकार की फेर–बदल की आवश्यकता नहीं होती थी, अपने आप में स्थिर, अटल या स्थाई होते थे उन्हें ध्रुपद कहा गया। ध्रुपद गम्भीर प्रकृति की गायकी है। इसे मर्दाना गायकी भी कहा जाता है। अकबर के दरबारी अबुल फजल के अनुसार, "ध्रुपद का विषय विशेष रूप से पौरूषवान एवं गुणवान व्यक्तियों की प्रशंसा करना है। दरबारी गायकों द्वारा ध्रुपद के माध्यम से अपने आश्रयदाताओं का गुणगान किया जाता था। ध्रुपदों का भावक्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। वर्तमान में उपलब्ध ध्रुपद रचनाओं में ईश्वर भक्ति, वीरगाथाएँ तथा नायक नायिका भेद विषय अधिक हैं। विविध पक्षों एवं भावों की विविधता इस गीत की प्रमुख विशेषता है।

4.4.1 ध्रुपद का स्वरुप, उत्पत्ति एवं विकास – 'ध्रुपद' का आधुनिक नाम ध्रुवपद हो गया है। 'ध्रुपद' शब्द संस्कृत के ध्रुपद शब्द का अपभ्रंश तथा हिन्दी नाम है। यह दो शब्दों के मेल से बना है। (1) ध्रुवा अथवा ध्रुव (2) पद। ध्रुव से तात्पर्य है 'नियत' एवं दृढ़ तथा 'पद' वह है जो गेय अथवा गाये जाने योग्य हो, जो निश्चित स्वर व ताल के आकार प्रकार में निबद्ध हो, जिसको गाते समय किन्चित मात्र भी बदला न जा सके। ध्रुपद शब्द जिसका गायकों में प्रचार है, संस्कृत के ध्रुपद शब्द का अपभ्रंश है। 'ध्रुव' का अर्थ है 'नियत' विशिष्ट रुप से रचित, पद का अर्थ है 'गेय शब्द समूह' अर्थात् ध्रुपद वह गान है जिसका प्रत्येक शब्द निश्चित स्वर तथा ताल में निबद्ध हो ।

भरत के अनुसार 'ध्रुवा' शब्द की व्याख्या इस प्रकार है– वर्ण, अलंकार, लय, यति एवं उपपाणि, इन अंगों के पारस्परिक ध्रुव अथवा नियत सम्बन्ध के कारण यह ध्रुवा कहलाती है। 'पद' शब्द की व्याख्या करते हुए मुनि भरत कहते हैं कि 'पद' अक्षर से सम्बद्ध प्रत्येक वस्तु कहलाती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ध्रुपद का तात्पर्य उस सांगीतिक अभिव्यंजना से है, जिसमें साहित्यिक विषय–वस्तु तथा गायन के निश्चित नियमों का पालन दृढ़ता से होता है। संगीत मकरंद

में ध्रुपद का वर्णन इस प्रकार हैः– इसमें उद्ग्राह, ध्रुवक तथा आभोग नामक तीन तुकें होती हैं, कुछ विद्वान उसे उद्ग्राह रहित तथा कुछ आभोग रहित गाते हैं तथा कुछ विद्वान ध्रुव को ही ध्रुपद कहते हैं। मानकौतुहल रचित ग्रन्थ के फारसी अनुवाद ग्रन्थ 'राग–दर्पण' के अनुसार 'ध्रुपद' में चार पंक्तियाँ होती हैं, ध्रुपद की भाषा देशी होती है। 'ध्रुपद' को समस्त रसों में बांधा जा सकता है। गायक तानसेन ने अपने ध्रुवदों में ध्रुपद को इस प्रकार लक्षित किया है–

''जो धुरपद नां सुध अछिरनि उक्त जुक्त न संगीत राग बनावै,
जो अग्यांन गुनी मन को पचावै भिम से निरगुनि को कीयौ गावै।
नौं रस राग जाने न अ लोकमध वाद री कवि कहावै,
साहि अकबर की सौं मोहि तौं दुशं और हांसी याही ते आवति अरथ पूछे ते कवि नाहि कर आव।

अबुल फज़ल ने 'आइनेअकबरी' में लिखा है– 'ध्रुपद' तीन या चार लयबद्ध पंक्तियों से निर्मित पद है। इन पंक्तियों की लम्बाई अनिश्चित है।

ध्रुपद का विषय प्रधानतया पौरुषवान एवं गुणवान व्यक्तियों की प्रशंसा करना होता है। 'ध्रुपद' का प्रचलन आगरा, ग्वालियर तथा आसपास के प्रदेशों में है। अबुल फज़ल कृष्ण के वर्णन से युक्त पदों को विष्णुपदों की संज्ञा देते हैं, ध्रुपद की नहीं। इन्होंने ध्रुपद गायकों तथा विष्णुपद गायकों को क्रमशः कलावंत तथा कीर्तनिया कहा है। वह चार या छह पंक्तियों से युक्त कृष्णविषयक पदों को 'विष्णुपद' लिखते हैं; जो मथुरा में गाये जाते हैं।

भावभट्ट ने (18वीं शताब्दी) ध्रुपद के लक्षण इस प्रकार दिये हैंः–

गीर्वाण मध्यदेषीय भाशा साहित्यराजितम्, द्विचतुर्वाक्य सम्पन्नं नरनारी कथाश्रयम्।
श्रृंगाररस भावाद्यं रागालापपदात्मकम्, पादान्तानुप्रासयुक्तं पादान्तयमकं च वा।
प्रतिपादं यत्र बद्धमेव पादचतुश्टयम्, उद्ग्राह ध्रुवकामोगोत्तमं ध्रुपद स्मृतम।

मुहम्मद करम इमाम के अनुसार– ध्रुपद में चार, पाँच चरण होते हैं, कभी–कभी दो चरण भी होते हैं। चरण का अर्थ 'तुक' से लेते हुए उन्होंने प्रथम तुक को (चरण) 'स्थाई' द्वितीय को अन्तरा, तीसरे चरण को 'भोग' तथा चौथे चरण को 'आभोग' कहा है। तुक को स्थल के अतिरिक्त 'खण्ड' की संज्ञा भी दी गयी है।

स्व0 भातखण्डे जी के अनुसार– ध्रुपद के चार भाग स्थाई, अन्तरा, सन्चारी तथा आभोग होते हैं तथा कुछ ध्रुपदों में केवल स्थाई व अंतरा ही होता है। वीर, श्रृंगार और शांत रस की प्रधानता ध्रुपदों में होती है, इनकी भाषा उच्च श्रेणी की होती है, इनका गायन चौताल, सूलफाक, झम्पा, तेवरा, ब्रहमा, रुद्र इत्यादि तालों में होता है। यह मर्दाना तथा जोरदार गायन है आधुनिक युगीन महान वाग्गेयकार–स्व0 आचार्य कैलाश चन्द्र देव बृहस्पति के अनुसार– एला आदि शुद्ध सूढ प्रबन्धों के 'ध्रुव' नामक धातु में नियोजित पद ध्रुपद कहलाते थे। इन्होंने भरतानुसार ध्रुवा+पद शब्दों की व्याख्या की है कि भाषा, स्वर, गति इत्यादि आवश्यक व्यंजक तत्वों को लेकर ध्रुवा की सृष्टि हुई। वाक्य, वर्ण, सांगीतिक, अलंकार, यति पाणि व लय के 'ध्रुव' (नित्य) रुप में अन्योन्याश्रित रुप को ध्रुवा कहते हैं। अक्षर सम्बद्ध प्रत्येक वस्तु पद कहलाती है । पद के दो प्रकार निबद्ध व अनिबद्ध में ध्रुवा निबद्ध अथवा 'सताल' पद के अन्तर्गत आते हैं। 'ध्रुपद' ध्रुव तथा मठ एवं छह अंगों, पाँच धातुओं आदि प्रबन्ध तत्वों को अपनी संरचना में समेटे हुए है। विमलकान्त राय चौधरी के अनुसार– ध्रुव का अर्थ है अचल तथा चिरस्थाई, इसका अर्थ यह हुआ कि ईश्वर ही ध्रुव है तथा उसके गुणसूचक पद को 'ध्रुपद' कहा जाता है।

यह ठीक से नहीं कहा जा सकता कि ध्रुपद का आविष्कार किसने किया, किन्तु राग दर्पण के रचयिता फकीर उल्ला के अनुसार ग्वालियर के राजा मान सिंह तोमर ध्रुपद गायन शैली के आविष्कारक माने जाते हैं।

13वीं शताब्दी में पं0 शारंगदेव द्वारा रचित ग्रन्थ 'संगीत–रत्नाकर' में उस समय गाए जाने वाले निबद्ध गान के अन्तर्गत प्रबन्ध गान का उल्लेख है। प्रबन्ध गान नाट्य शास्त्र में वर्णित ध्रुवगान की तरह नाट्य से सम्बन्धित नहीं था, बल्कि ये गान अपने आप में स्वतन्त्र रुप लिये हुये था। इन प्रबन्धादि गीतों के विभिन्न खण्डों को धातु कहा गया है। ऐसे 4 धातु का ग्रन्थ में प्रयोग किया गया है जो इस प्रकार हैं:– उद्ग्राह, मेलापक, ध्रुव व आभोग।

1.उद्ग्राह धातु से गीत का आरम्भ होता था।

2.द्वितीय धातु को 'मेलापक' कहा गया है क्योंकि ये धातु प्रथम और तृतीय धातु का मेल कराने वाला कहा गया है।

3.तृतीय धातु 'ध्रुव' कहलाता है। प्रबन्ध गीतों में ये धातु सदैव अविचल रुप में विद्यमान रहता है इसीलिये इसे 'ध्रुव' कहा गया है। किसी भी प्रबन्ध गीत में इसका त्याग नहीं किया जा सकता।

4.अन्तिम धातु आभोग है जो गीत की समाप्ति का संकेत देता है।

प्रबन्धों के द्विधातु प्रबन्ध वे हैं जिनमें दो धातुओं का प्रयोग किया जाता है जो हैं उद्ग्राह व ध्रुव।

त्रिधातु प्रबन्धों में तीन धातु का प्रयोग किया जाता है जैसे उद्ग्राह, मेलापक व ध्रुव, या उद्ग्राह, ध्रुव और आभोग। चतुर्धातु प्रबन्धों में इन चारों धातुओं यानि उद्ग्राह, मेपालक, ध्रुव व आभोग का प्रयोग किया मिलता है।

प्रबन्ध के छः अंग स्वर, विरुद, पद, तेनक, पाट और ताल बताए गये हैं।

1.स्वर– सा रे ग म प ध नि इत्यादि 7 स्वरों को स्वर कहा गया है।

2.विरुद– किसी व्यक्ति विशेष के गुणों का वर्णन करने वाले शब्दों को विरुद कहा गया है।

3.पद– साहित्यिक भाग को 'पद' कहा गया है।

4.तेनक– मंगलार्थक शब्दों को तेनक कहा गया है। जैसे ओं, हरिओम तत्सत् इत्यादि।

5.पाट– मृदंग आदि वाद्यों के निरर्थक बोलों को पाट कहा गया है।

6.ताल– काल परिमाण को ताल कहा गया है।

इस प्रकार 4 धातु और 6 अंगों को लेकर प्रबन्धादि गीतों की रचना की गई है। 'संगीत रत्नाकर' में प्रबन्ध के एक प्रकार 'सालगसूड प्रबन्ध' के अन्तर्गत 'ध्रुव प्रबन्ध' नामक एक प्रकार में ध्रुव और आभोग धातु के बीच में 'अन्तरा' नामक अन्य धातु का उल्लेख है। 'अन्तरा' धातु का प्रयोग विशेषकर त्रिधातु सालगसूड़ प्रबन्धों में किया गया है जिसके लक्षण आजकल के ध्रुपदों से बहुत मिलते हैं। इस आधार पर अनेक विद्वान ध्रुपद गान का उद्गम प्राचीन 'ध्रुव प्रबन्ध' से मानते हैं।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर जिनका काल (ई0 सन् 1486–1516) माना जाता है, उन्होंने अपने दरबारी गायकों, संगीत विद्वानों की सहायता से ध्रुपद शैली के गीतों की रचना इन सालगसूड़ प्रबन्धों के आधार पर की होगी। इन प्रबन्धों को सुन्दर एवं नया, व्यवस्थित रुप देकर ध्रुपद गीतों की रचना करके उसे लोकप्रिय बनाने तथा इसका प्रचार करने में उनका बहुत योगदान रहा है।

'राग दर्पण' के रचयिता फकीर उल्ला के अनुसार राजा मानसिंह तोमर ध्रुपद शैली के आविष्कारक एवं प्रर्वतक माने जाते हैं। आईने–अकबरी के रचयिता अबुल फज़ल के अनुसार ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर अपने दरबारी गायक नायक बक्शू, मछू और भानु की सहायता से

इस नई शैली ध्रुपद को प्रस्तुत किया। फकीरउल्ला के अनुसार भी राजा मानसिंह तोमर ने नायक बख्शू, नायक भानु, नायक पांडवी, महमूद, लोहंग तथा कर्णा आदि दरबारी गायकों की सहायता से ध्रुपद का आविष्कार किया। पाश्चात्य विद्वानों जैसे कैप्टन विलर्ड, सर विलियम जोन्स, सर आऊस्ले के अनुसार भी राजा मानसिंह तोमर को इस ध्रुपद शैली का प्रवर्त्तक माना गया है।

राजा मानसिंह तोमर ध्रुपद के विशेषज्ञ थे और उन्होंने स्वयं बहुत से ध्रुपदों की रचना की थी जो आज तक प्रचलित है। राजा मानसिंह ने ध्रुपद गायकों को बड़ा प्रोत्साहन दिया तथा इस गायन शैली का अच्छा प्रचार कराया। उन्होंने एक सभा का आयोजन किया तथा उसमें अपने समय के उच्चकोटि के गायकों को आमन्त्रित किया, जिसके फलस्वरुप 'मान कौतुहल' नामक संगीत पुस्तक की रचना हुई। उस समय के प्रसिद्ध गायकों जैसे चरजू, बख्शू, भानू इत्यादि की सहायता से इस अद्वितीय ग्रन्थ की रचना की गई। इस समय हज़ारों ध्रुपदों की रचना हुई और उन्हें लोकप्रिय बनाने में भी राजा मानसिंह का बहुत योगदान रहा।

ध्रुपद शब्द प्रधान गायकी है, शुद्ध उच्चारण का विशेष महत्व होता है। इस गायकी में स्वरों तथा बोलों के स्पष्ट एवं खुला लगाव का अपना महत्व है। ख्याल गायन की भांति आकार में द्रुत गति की तानबाजी इस गायकी में वर्जित है। ध्रुपद गायन में बोलतान, गमक तान, मींड, आन्दोलन आदि का प्रयोग होता है। सर्वप्रथम गीत प्रारम्भ करने के पूर्व नोम् तोम् आलाप किया जाता है तथा गीत आरम्भ कर उसके शब्दों का आलाप किया जाता है। पद रचना के आलाप क्रमशः बढ़त तथा उपज दोनों अंगों से किये जाते हैं। बढ़त में शब्दों की विभिन्न रचनाएँ प्रस्तुत की जाती हैं तथा उपज में दुगुन, तिगुन, चौगुन, आड़, कुआड़ आदि लयकारियों द्वारा ध्रुपद गायकी और प्रभावशाली बन जाती है। ध्रुपद गायन में विशेष रूप से परवावज की संगत होती है क्योंकि परवावज के बोल खुले होने के कारण इस गायकी की गम्भीरता से पूर्व मेल खाते हैं। इसमें निम्न तालों का प्रयोग होता है, जैस– चौताल, आड़ाचौताल, सूलताल, रूद्र इत्यादि। कुछ रचनाओं में झंपा एवं तीवरा तालों का प्रयोग भी होता है परन्तु वर्तमान में ध्रुपद गायन के लाभ विशेष रूप से चौताल, सूलताल एवं तीवरा का अधिक प्रयोग होता है।

ध्रुपद एक विशिष्ट गम्भीर गीत शैली रही है जिसमें श्रृंगार, करूण, वीर, वात्सल्य आदि रसों की अभिव्यक्ति होती है। वर्तमान में ध्रुपद गायन का अर्थ जटिल आलापचारी एवं विकट एवं क्लिष्ट लयकारी के रूप में सीमित रह कर अपनी लोकप्रियता को दिन प्रतिदिन खोता जा रहा है। संगीत के क्षेत्र में ऐतिहासिक दृष्टि से अकबर का युग, तानसेन की ध्रुपद शैली के वैभव का युग माना जाएगा जब ध्रुपद गायन शैली अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची थी। समकालीन स्वामी हरिदास के परम शिष्य तानसेन ने राजा मानसिंह द्वारा अविष्कृत ध्रुपद शैली को न मात्र अंगीकार किया वरन् उसे सुव्यवस्थित और परिमार्जित कर संगीत के उच्च शिखर पर सुशोभित किया। तानसेन का ध्रुपद संगीत घरानेदार ध्रुपद संगीत का स्त्रोत बना और उसकी शिष्य परम्परा, तानसेन परम्परा और तानसेन(सेनिया) घराने का सैद्धान्तिक आधार बनी। इस समय ध्रुपद शैली की चार बानियाँ प्रचलन में थी।

1. गौउहारबानी
2. डांगुरबानी
3. खंडारबानी
4. नौहारबानी

4.4.2 ध्रुपद के घराने – घरानों का विकास गुरू–शिष्य या सन्तान के मध्य में ही हुआ था। पारिवारिक रूप से जो विकास हुआ था आधुनिक युग में भी उसे हम मानते हैं। घरानों के विकास का वर्णन करते हुए अभी जो घराने हम पाते हैं उनमें विशेषतः ध्रुपद घराना ही मिलता है, जिसमें उल्लेखनीय नाम सेनी घराना, ग्वालियर घराना, आगरा घराना इत्यादि पाते हैं। इन घरानों में बहुबानी गायकों का नाम आता है। कोई गौउहारबानी के गायक हैं तो कोई डांगुरबानी के गायक हैं तो कोई खंडारबानी तो कोई मिश्र घराने के ही गायक हैं। साधारणतः सेनी घराने में सब बानी को पाते हैं। ग्वालियर गौहार गाते हैं, आगरा का कहना है वे नौहारबानी गाते हैं। अतरौली में एक–एक परिवार एक–एक बानी गाते हैं। सहारनपुर डांगुरबानी गाते हैं। जिस प्रकार ख्याल गायन में विभिन्न घराने हैं उसी प्रकार ध्रुपद की चार बानियाँ प्रसिद्ध हैं। ध्रुपद की विभिन्न शैलियों को बानी कहा जाता है। बानियों का आविष्कार तत्कालीन विद्वान प्रसिद्ध ध्रुपद गायकों ने किया था।

ये बानियाँ विभिन्न गायकी के लक्षणें से युक्त थी, जैसे आज घराना संगीत में विभिन्न घरानों की गायकी दृष्टिगोचर है। जिस प्रकार ध्रुपद गायन पद्धति में हम ध्रुपद की चार अलग–अलग बानियों का वर्णन पाते हैं। उसी प्रकार पहले ग्राम राग पाँच भिन्न–भिन्न शैलियों में गाए जाते थे।

'संगीत रत्नाकर' प्रसिद्ध संगीत ग्रन्थ में पंच गीत की चर्चा की गई है। स्वरों का अलग–अलग प्रयोग इन शैलियों में बताया गया है। इन पाँचों के नाम हैं। शुद्धागीति, भिन्नगीति, बेसरागीति और साधारणगीति। पाँचवें प्रकार में अर्थात साधारणगीति की विशेषता यही थी कि इसमें पहली चारों गीतियों की विशेषताओं का सम्मिश्रण होता था। ध्रुपद गायन के अन्तर्गत बानियाँ इन्हीं गीतियों के लक्षणों से कुछ–कुछ मिलती जुलती हैं।

ध्रुपद गायन की चार बानियाँ निम्नलिखित हैंः–

1. **गौउहार बानी :** यह शुद्धागीति से मिलती जुलती है, तानसेन ध्रुपद पद्धति के अनुसार इन बानी में स्वरों की शुद्धता बनाते हुए बहुत सुरीले ढंग से गायन होता है। इसमें मींड़ का प्रयोग अधिक होता है। तानसेन इसी बानी के प्रमुख गायक थे। इसके साथ वे अन्य बानियों पर भी अधिकार रखते थे। तानसेन के पुत्र बिलास खाँ इस बानी के कुशल एवं पारंगत गायक थे।
2. **डांगुर बानी :** यह भिन्नागीति से मिलती जुलती है इसमें ध्रुपद बहुत सुन्दर ढंग से गाए जाते हैं। इसमें मींड़ का प्रयोग विशेष ढंग से किया जाता है तथा गमक का कलात्मक प्रयोग होता है। तानसेन के गुझ वृन्दावन के हरिदास स्वामी इसी बानी के गायक थे तथा शिष्यों को भी इस बानी के विशिष्ट लक्षणों का पालन करना पड़ता था।
3. **खंडार बानी :** यह बानी बेसरागीति से मिलती जुलती है। इसमें तीव्र गति से युक्त गमकों का प्रयोग होता है। इस बानी के विशेष लक्षणों का प्रयोग बाज बहादुर अपने गायन में करते थे तथा मिश्री सिंह गायन एवं वीणा वादन दोनों में इसका प्रयोग करते थे।
4. **नौहार बानी :** यह बानी गौड़ीगीति से बहुत मिलती जुलती है। सुनने में आता है कि श्रीचन्द जो स्वामी हरिदास के शिष्य थे, इस बानी की गायकी में पारंगत थे। तानसेन की एक ध्रुपद रचना में इन चारों बानियों का वर्णन किया गया है और उनके गुण बताए गए हैं, इसमें गौड़हार बानी राजा के समान उच्च, खंडार बानी को सेनापति के समान, डांगुर बानी को मंत्री के समान तथा नौहार बानी को निम्न श्रेणी का बताया गया है।

प्राचीनकाल से विचार करें तो देखा यह जाता है कि जो जहाँ से शिक्षा प्राप्त करते थे वहीं की बानी गाते थे। जैसे ग्वालियर से शिक्षा प्राप्त गौउहारबानी ही गाते थे। इसमें राजा मानसिंह का नाम आता है। आगरा से शिक्षा प्राप्त नौहारबानी गाते थे, जिसमें सुजान खाँ का नाम आता है। सुजान खाँ के प्रपौत्र नौहार गाते थे। तानसेन के दामाद नबाद खाँ खंडारबानी गाते थे। साथ–साथ बीना वादक भी थे। एकमात्र डांगुर को लेकर ही असुविधा की सृष्टि हुई। अकबर के समय तक

डांगुर का परिचय नहीं मिलता है। इसके बाद हरिदास डांगुर का नाम उन्हीं की रचना में मिलता है। वस्तुत सेनी घराने का आरम्भ तानसेन से ही होता है। सर्वप्रथम इसका विकास आगरा में हुआ। अकबर के समय तानसेन का बड़ा पुत्र ग्वालियर गया जहाँ पर सेनी घराना बना। तानसेन के पुत्र विलास खाँ से आगरा में रबाबी घराना बना। शाहजहाँ के समय इस घराने के वंशधर दिल्ली गये और वहाँ जाकर ध्रुपद की शिक्षा दी। शाहजहाँ के समय तानसेन के दामाद नबाद खाँ जो आगरे में थे दिल्ली चले गये थे। यह बीनकार घराना था। इस घराने के प्रभाव से जयपुर में मनरंग घराना बना था।

1. **ग्वालियर सेनी ध्रुपद घराना** –यह घराना तानसेन के बड़े पुत्र तानतरंग से आरम्भ होता है। तानतरंग ध्रुपद के विशिष्ट ज्ञानी थे। वे बानी आलाप प्रवृति जानते थे। उनके वंश में विभिन्न प्रकृति के ध्रुपद का आलाप होता था। तानतरंग के अतिरिक्त इस घराने में मुरादसेन, सुखसेन, उत्तमसेन, आलमसेन इत्यादि का नाम मिलता है। आलमसेन के पास सहारनपुर के अलाबन्दे जाकिरूद्दीन आलाप की तालीम लिया करते थे। इस घराने में सभी ध्रुपद चर्चा करते थे और ध्रुपद गान में मौलिकता भी थी। तानसेन इस घराने के सर्वश्रेष्ठ प्रतिष्ठापक थे। तानसेन के बाद वंश–परम्परा से पिता, पुत्र, शिष्य इस तरह से यह घराना धारावाहिक रूप में चला आ रहा था। बाकी घरानों में तो बहुत से मतवाद हैं। आधुनिक काल में जिसे हम डांगुर कहते हैं इनके पूर्वपुरूष का सम्पर्क सेनी घराने से ही था। सेनी घराना ध्रुपद का सर्वश्रेष्ठ घराना था। तानसेन के पुत्र कन्या वंश को लेकर ही इस घराने का विकास हुआ था। तानसेन को ही गायकों और वादकों में सेनिया घराने का आदि पुरूष माना जाता था।

ध्रुपद सेनी घराने के अन्तर्गत रबाबी सेनी घराना, जयपुर सेनी घराना, बीनकार सेनी घराना तथा ग्वालियर सेनी घराना निर्मित हुए। कोई घराना पिता–पुत्र के रूप में तो कोई पुत्र–कन्या के रूप में तो कोई शिष्यों के माध्यम से ही नये घराने बने। यद्यपि यह सब घराने सेनी घराने के ही अन्तर्गत थे किन्तु इसमें अपनी भी कुछ खासियत थी जिससे घरानों का अलग–अलग नाम पड़ा था। आगे चलकर सेनी घराने के अतिरिक्त ग्वालियर, आगरा, सहारनपुर इत्यादि ध्रुपद के घराने बने किन्तु सर्वाधिक विशेषता सेनी घराने की ही थी।

2. **मिश्र ग्वालियर ध्रुपद घराना** –जितने घरानों ने नाम किया है उनमें से ग्वालियर अन्यतम है जिसका विकास राजा मानसिंह के समय से हुआ है। सन्तान के रूप में तानसेन ग्वालियर में ही प्रतिष्ठित हुए थे। ध्रुपद गायक गदाधर के वंशधर चिन्तामणि मिश्र ने 19वीं शताब्दी में ग्वालियर में ध्रुपद शिष्य मंडल का गठन किया था जिनमें प्रधान शिष्य नारायण शास्त्री तथा देवजी बुआ थे।

3. **आगरा ध्रुपद घराना** –इसके बाद आगरा ध्रुपद घराना का विकास होता है। शाहजहाँ के समय में इस घराने के पुत्रवंश दिल्ली पहुँचे थे। आगरा में कन्यावंश का चिन्ह तक नहीं मिलता है। यह भी दिल्ली पहुँच गया था। शाहजहाँ के समय पुत्रवंश का प्रभाव बढ़ा था। पुत्रवंश में केवल विलास खाँ के दामाद जैसे लाल खाँ गुण समुन्दर का प्रभाव पड़ा। कन्यावंश का प्रभाव जयपुर, लखनऊ तथा बनारस में फैला। दिल्ली में पुत्रवंश पहुँचने के बाद भी उतना प्रभाव नहीं पड़ा जितना कि राजस्थान की तरफ पड़ा था। बाद में यह बनारस की तरफ चला गया था। आधुनिक काल में आगरा को नौहार कहकर पुकारा गया है। इसलिए कि इस घराने में बहुत दिनों तक नौहारबानी का नाम था।

4. **अतरौली ध्रुपद घराना**– इस घरानें में चारों बानी का नाम आता है। यहाँ एक–दो परिवार ऐसे थे जो ध्रुपद की चर्चा करते थे। कुछ लोगों का कहना है कि हरिदास स्वामी कीर्तनकार थे, ध्रुपदकार नहीं किन्तु तब भी परवर्ती काल में हरिदास स्वामी को ध्रुपदकार कहा गया था। अतरौली घराने के प्रसिद्ध गायक काले खाँ और चाँद खाँ थे। दूसरे गायकों में दुल्लू खाँ और छज्जू खाँ थे जो

अतरौली घराने में ही पैदा हुए थे। इनकी बानी गौहारबानी थी और ये ध्रुपद धमार बहुत अच्छा गाते थे। अतरौली में गुलाम गौस का जन्म हुआ था। इनकी बानी गौहारबानी थी।

5. हापुर ध्रुपद घराना –इस घराने में सदरूद्दीन का नाम विशेष तौर पर आया है। सदरूद्दीन जयपुर में गये और यह खंडारबानी ध्रुपद गाते थे। हापुर घराने में कायम खाँ का नाम आता है। कायम खाँ के पुत्र निजाम खाँ थे। निजाम खाँ के तीन पुत्र थे– 1. वजीर खाँ, 2. यूसुफ खाँ तथा 3. सदरूद्दीन खाँ। वजीर खाँ तथा यूसुफ खाँ बड़े मोहम्मद के भान्जें लगते थे। ये दोनों मुसलमान थे। हापुर में नहीं रहते थे।

6. बेतिया ध्रुपद घराना –बेतिया के महाराज के समय से वह घराना बना। यहाँ के प्रधान आनन्द किशोर थे। आनन्द किशोर शिवदयाल मिश्र के छात्र थे जो ग्वालियर सेनी वंश से सम्पर्कित थे। यह जयपुर के करीमसेन की शिक्षा में शिक्षित थे। इसलिये यह घराना सेनी घराने की ही शाखा माना जाता है। चारों बानी के ध्रुपद यहाँ पर गाये जाते थे। करीमसेन चारों बानी में ज्ञान रखते थे।

7. विष्णुपुर ध्रुपद घराना– विष्णुपुर बँगला का ही एक अंश है। उत्तर प्रदेश में जैसे अनेक घराने हैं वैसे बंग प्रदेश में भी विभिन्न तरह के घराने बने। उनमें सबसे पहले विष्णुपुर का नाम आता है। इस घराने का प्रारम्भ रामशंकर भट्टाचार्य के समय से होता है। रामशंकर ने जिस गुरू से शिक्षा ली थी वे पश्चिमाचंल प्रदेश से आये हुए थे। विष्णुपुर घराना रामशंकर के शिष्य–प्रशिष्य के माध्यम से रक्षित हुआ। क्षेत्रमोहन गोस्वामी, अनन्तलाल बन्द्योपाध्याय, रामप्रसन्न बन्धोपाध्याय इत्यादि प्रसिद्ध हुए। जदुभट्ट, राधिका गोस्वामी विष्णुपुर घराने की सन्तान थे किन्तु बाद में ये अन्य घराने के शिष्य बने।

8. सहारनपुर ध्रुपद घराना – यह घराना आज भी ध्रुपद के शुद्ध घराने के नाम से ही प्रचलित है। यह डांगुरबानी ध्रुपद गाते थे। इमामबख्श से यह घराना आरम्भ होता है। इमामबख्श के पुत्र बैराम खाँ ने बन्देअली खाँ को सिखाया था और ध्रुपद का प्रचलन किया था।

अभ्यास प्रश्न

---

1. लघु उत्तरीय प्रश्नः

(क) ध्रुपद की डांगुर वाणी की क्या विशेषताएँ हैं ?

(ख) ध्रुपद गायन का इतिहास संक्षिप्त में बताइये ?

(ग) प्रबन्ध गान की 4 धातु का संक्षिप्त विवरण दीजिए ?

2. सत्य असत्य बताइयेः

(क) ध्रुपद गम्भीर गायन शैली है।

(ख) ध्रुपद गान का उद्गम प्राचीन ध्रुव प्रबन्ध से माना जाता है।

(ग) ध्रुपद गायन छः भागों में बँटा रहता है।

(घ) नौहारी बानी में विलम्बित रचनाएँ अधिक होती हैं।

3. बहुविकल्पीय प्रश्नः

(क) ध्रुपद गायन की बानियाँ प्रचलित हैं ?

(1) 2 (2) 4 (3) 5

(ख) ध्रुपद की मूल उत्पत्ति के स्रोत प्रबन्ध गायन की धातु है।

(1) स्थाई (2) उदग्रह (3) अन्तरा

(ग) ध्रुपद गायन के विशेषज्ञों में थे।

(1) सदाक हुसैन (2) राजा मानसिंह तवर (3) ओमकार नाथ

4.5 ठुमरी गायन शैली का स्वरुप, उत्पत्ति एवं विकास

ठुमरी शब्द का व्यवहार हिन्दुस्तानी संगीत की एक विशेष गेय विधा के लिए किया जाता है। यद्यपि यह शब्द इसी रुप में अथवा थोड़े रुपांतर के साथ उत्तर भारत की प्रायः सभी भाषाओं में प्रचलित है, जैसे हिंदी, पंजाबी और गुजराती में ठुमरी, सिंधी में ठुमिरी, मराठी में ठुमरी तथा ठुंबरी।

श्री सुनील कुमार बोस का विचार है कि ठुम और री इन दो शब्दों के योग से ठुमरी शब्द बना है। ठुम शब्द 'ठुमकत चाल' अर्थात् 'राधा जी की चाल' और री शब्द 'रिभावत' अर्थात् 'भगवान कृष्ण के मन को रिझााने' की ओर इंगित करता है। अतः ठुमरी शब्द में 'राधा के ठुमक कर चलते कृष्ण के मन को रिझाने की अभिव्यंजना है।

प्रसिद्ध ठुमरी गायक स्वर्गीय गिरिजाशंकर चक्रवर्ती के मतानुसार ठुमरी शब्द की व्युत्पत्ति ठुमक और रिझाना से हुई है। ठुमक 'लय' का और रिझाना 'अर्थभाव' का द्योतक होने के कारण ठुमरी शब्द 'लयकारी' और 'भावाभिव्यंजना' दोनों को व्यक्त करता है।

स्वर्गीय चन्द्रशेखर पंत के अनुसार ठुम और री शब्दों के योग से निर्मित ठुमरी में ठुम या ठुमक शब्द 'नृत्य के पद संचालन' और 'ठसक भरी गर्वीली चाल' को व्यक्त करता है। इसी के निकटतम शब्द 'ठुमका' का अर्थ है 'छोटे आकार का'।

ठुमरी के उद्भव के बारे में लोगों की विभिन्न मान्यताएँ हैं। सामान्यतया लोगों की धारणा है कि उन्नीसवीं शताब्दी में अवध के शासक वाजिद अली शाह के समय लखनऊ दरबार से ठुमरी गान शुरु हुआ। वाजिद अली शाह का उर्दू शायरी, नाट्य संगीत, कथक नृत्य तथा ठुमरी के क्षेत्र में विशेष योगदान रहा है। उन्होंने 'अख्तर' उपनाम से अनेक काव्य तथा संगीत रचनाएँ कीं और अपने दरबार के तत्कालीन प्रसिद्ध कथक नर्तक ठाकुर प्रसाद जी से कथक नृत्य सीखा, जो कि लखनऊ घराने के प्रख्यात कथक नर्तक महाराज विंदादीन तथा कालिकाप्रसाद जी के चाचा के गुरु थे।

डॉ0 सुशील कुमार चौबे के मतानुसार लखनऊ के उस्ताद सादिक अली खाँ ठुमरी के अन्वेषक समझे जाते हैं। एक शताब्दी पूर्व वे लखनऊ के श्रेष्ठ और अग्रण्य संगीतज्ञों में से थे। ठुमरी का संबंध लखनऊ से है और वहाँ यह एक सुकुमार कला के रुप में विकसित हुई। वे कव्वालबच्चे घराने के प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। उनकी प्रसिद्धि विशेषकर ठुमरी गायक के रुप में थी। वे वाजिद अली शाह के दरबारी संगीतज्ञ अली बख्श खां के बहनोई थे, उनके प्रसिद्ध शिष्यों में अली बख्श खां के सुपुत्र खुर्शीद अली खां, इनायत हुसैन खां (सहसवान), महाराज विंदादीन, भैया गणपत राव, मौजुद्दीन खां तथा राम कृष्ण बुआ वजे इत्यादि लोग थे। कहते हैं कि वाजिद अली शाह और नवाज वजीर मिर्जा बालाकदर उर्फ कदर पिया ने भी सादिक अली खां से ठुमरी का ज्ञान प्राप्त किया था। इसमें कोई संदेह नहीं कि वाजिद अली शाह और उस्ताद सादिक अली खां ठुमरी के प्रमुख उन्नायकों में से थे। किन्तु ऐतिहासिक तथ्यों से ज्ञात होता है कि उनके पहले ही सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में ठुमरी का अस्तित्व प्रकाश में आकर लोकप्रिय गीत भेद के रुप में प्रतिष्ठित हो चुका था।

कैप्टन विलर्ड ने ठुमरी का वर्णन हिन्दुस्तानी संगीत के तत्कालीन गीत भेदों में क्रमशः ध्रुपद, ख्याल तथा टप्पा के बाद किया है। इससे ज्ञात होता है कि तत्कालीन संगीत क्षेत्र में प्रतिष्ठा के क्रम में ठुमरी का स्थान ध्रुपद, ख्याल और टप्पा के बाद समझा जाता था। आज भी यही स्थिति है इसलिए संगीत सभाओं में अक्सर ख्याल या टप्पा के बाद ही ठुमरी गाने का रिवाज है। कला की किसी नई विधा को समाज में लोकप्रिय होकर अपना स्थान बनाने और सांस्कृतिक मान्यता प्राप्त करने में कम–से–कम 25–30 वर्षों का समय लगना स्वाभाविक ही है। अतः हिन्दुस्तानी संगीत के अन्तर्गत टप्पा और ख्याल के बाद अपना स्थान निर्धारित करने में यदि ठुमरी को न्यूनतम अवधि भी लगी हो तो भी ठुमरी का अस्तित्व 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में अवश्य होना चाहिए। यह बात जोधपुर के राजा मानसिंह उपनाम रसराज और किशनगढ़ के महाराजा जवान सिंह उपनाम ब्रजराज तथा नगधर कृत ठुमरियों से भी प्रमाणित होती है। महाराजा मानसिंह का कार्यकाल 1803 से सन् 1843

तक था। उस समय तक ठुमरी के प्रति शासक वर्ग की रुचि बहुत बढ़ चुकी थी और उसका प्रवेश राज–दरबारों में हो चुका था। इससे सिद्ध होता है कि अवध नरेश वाजिद अली शाह पहले से ही कुछ अन्य राजदरबारों से ठुमरी गायन को प्रोत्साहन मिल रहा था।

ठुमरी की उत्पत्ति के विषय में श्री बनर्जी कहते हैं, अवस्था देखने से यह विश्वास होता है कि टप्पा को और संक्षिप्त करके गाने से ठुमरी गान का उद्‌भव हुआ है। वास्तव में टप्पा और ठुमरी इन दोनों गान शैलियों को लखनऊ क्षेत्र में प्रोत्साहन मिला और वहां इनका प्रचार और प्रसार लगभग एक साथ रहा। शोरी मियां के कारण लखनऊ में टप्पा का प्रसार अपेक्षाकृत कुछ पहले ही आरंभ हो गया था, अतः एक ही प्रदेश में दोनों के प्रचलित होने के कारण कुछ ठुमरियां और उनकी शैली पर टप्पा का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। क्योंकि भारतीय संगीत में कुछ अन्य गीत–भेद भी इसी प्रकार दूसरी गान शैलियों से प्रभावित हुए हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के हकीम मुहम्मद करम इमाम, श्री क्षेत्रमोहन गोस्वामी तथा कृष्णधन बनर्जी जैसे ग्रंथकारों द्वारा गुलाम रज़ा, मियां शोरी जैसे सुप्रसिद्ध संगीतज्ञों के संदर्भ में ठुमरी के उल्लेख से नवाब आसफुद्‌दौला के समय अर्थात् 1775 से सन् 1797 पर्याप्त लखनऊ में ठुमरी के आभाष मिलते हैं। लगभग उसी समय, अर्थात् सन् 1779 से लेकर सन् 1803 के बीच जयपुर के महाराजा सवाई प्रतापसिंह के राज्यकाल और उनके संरक्षण में श्री राधागोविन्द संगीतसार नामक संगीत के एक वृहत् ग्रंथ की रचना हुई जिसमें ठुमरी का वर्णन एक राग विशेष के रुप में किया गया है। अतः इससे भी ईसा की अठारहवीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थांस में ठुमरी गान के प्रचलित होने से पता चलता है। इतना ही नहीं, कुछ अन्य सूत्रों द्वारा तो उससे भी पूर्व दिल्ली के संगीत–रसिक बादशाह मोहम्मद शाह 'रँगीला' के समय भी ठुमरी के अस्तित्व का पता चलता है।

मोहम्मद शाह रँगीले का राज्यकाल सन् 1719 से सन् 1749 तक रहा। सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ नेमत खाँ 'सदारंग' इसी के दरबार में थे और इसी की प्रशंसा में उन्होंने अनेक ख्यालों की रचना की। डा0 शालिग्राम गुप्त ने 'मोहम्मद शाह रँगीला की रचनाएँ' नामक अपने लेख में मोहम्मद शाह रँगीले कृत मुल्तानी राग मे त्रिताल की एक ठुमरी उद्धत की है, जो इस प्रकार :

मुलतानी–ठुमरी–त्रिताल

अब तो नेह नजर हो राखो ए बने प्यारे। तुम्हरी दया ते जग जीवत नित, महंमद सा रँगीले लाल सबको सुख देत न्यारे।।

औरंगज़ेब का राज्यकाल लगभग सन् 1658 से सन् 1707 तक रहा। उसके समय में काश्मीर के सूबेदार फक़ीरुल्लाह ने सन् 1665 के लगभग मानकुतूहल नामक ग्रंथ का फारसी भाषा में रागदर्पण के नाम से अनुवाद किया। अनुवाद–ग्रंथ होते हुए भी रागदर्पण में फक़ीरुल्लाह ने अपने समकालीन प्रचलित संगीत का भी उल्लेख किया है। रागदर्पण की रचना के प्रायः दस वर्ष पश्चात् सन् 1675 के लगभग मिर्जा खां इब्नेफ़खरुसद्‌दीन मोहम्मद ने फारसी भाषा में तोहफ़तुल–हिंद नामक ग्रंथ लिखा। इन दोनों ही ग्रंथों में टप्पा और ठुमरी का उल्लेख मिलता है। फक़ीरुल्लाह के समय बरवा–धुन के रुप में ठुमरी का प्रचलन था। मिर्जा खाँ के समय प्रचलित ठुमरी और पहाड़ी रागिनियों के लक्षणों में दोनों के निर्माणतत्व एक ही जैसे होने के कारण ऐसा विदित होता है कि उस समय पहाड़ी और ठुमरी संभवतः परस्पर पर्यायवाची रहे होंगे। इसका संकेत पंडित दामोदर कृत संगीतदर्पण और पुण्डरीक विट्‌ठल कृत रागमाला से भी मिलता है क्योंकि जहाँ तोहफतुल–हिंद में (शिवमतानुसार) और रागमाला में पहाड़ी को श्री राग की रागिनी (पत्नी) बताया गया है। इससे अनुमान होता है कि कालांतर में पहाड़ी और ठुमरी एक ही समझी जाने लगी होगी।

रागदर्पण का ठुमरी–संबंधी उल्लेख ऐतिहासिक दृष्टि से अभी तक सबसे पुराना है। यद्यपि इसके पूर्व ठुमरी का कोई उल्लेख अभी तक नहीं मिला है, परंतु आइने अकबरी में श्री राग की रागिनियों में बिहारी का उल्लेख है। इसी प्रकार ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कृष्णभक्त कवि सूरदास कृत गेयपदों के संदर्भ में जँगला का उल्लेख मिलता है। बिहारी और जँगला यह दोनों ठुमरी की प्रसिद्ध धुनें हैं। अतएव इसके आधार पर कहा जा सकता है कि ठुमरी का अस्तित्व तो मुगलकाल में था ही,

अनुमानतः इसे गाने की परंपरा लोक में उससे भी पहले से चली आ रही है। सत्रहवीं, अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी की ठुमरी का सिंहावलोकन करने पर ज्ञात होता है कि अधिकतर बरवा, पहाड़ी, काफ़ी, जँगला, मुलतानी, भैरवी, सिंधु भैरवी, सिंधु काफ़ी, सिंधु मुलतानी, मुलतानी काफी, मुलतानी बरवा, सावनी बरवा, देस, पीलू, गारा, बिहारी, कालिंगड़ा इत्यादि रागों में ठुमरी गाई जाती रही है। इनमें से अधिकांश रागों का विकास लोक–धुनों से हुआ है जिनमें से बरवा और पहाड़ी का सत्रहवीं शताब्दी में ठुमरी के रुप में गाने का खूब रिवाज़ था। इसी प्रकार सत्रहवीं शताब्दी से लेकर वर्तमान ठुमरी की रचनाओं तक में ब्रजभाषा का आधिपत्य दृष्टिगोचर होता है। इससे पता चलता है कि समय–समय पर जनरुचि–परिवर्तन के कारण यद्यपि वर्तमान ठुमरी का स्वरुप स्वभावतः तत्कालीन ठुमरी से अनेक अंशों में भिन्न हो चुका है, तथापि लोकधुन और लोकभाषा का प्रयोग ये दो मूल तत्व ठुमरी के अंतर्गत अब भी अक्षुण्ण रुप से चले आ रहे हैं। इससे सिद्ध होता है कि ठुमरी मूलतः लोकसंगीत से संबद्ध विधा है।

भारत की सांस्कृतिक गतिविधियों में मध्यदेश के केंद्र में स्थित ब्रज क्षेत्र का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहा है। कथक नृत्य उत्तर भारत की एक सुसंस्कृत और शास्त्रीय नृत्यविधा है। ठुमरी और कथक नृत्य, दोनों के विषय ब्रज के कृष्णचरित्र, रास और मध्यकालीन रीति साहित्य से अनुप्रमाणित हैं। दोनों का विकास और प्रसार–क्षेत्र भी मुख्यतः मध्यदेश रहा है। इस प्रकार विषयवस्तु, शैली, विकास व प्रसारक्षेत्र की एकता के कारण ठुमरी और कथक नृत्य में परस्पर समन्वय होना स्वाभाविक ही था। अतः वैश्विक समाज में, गान और कथक नृत्य, दोनों कलाओं के घरानेदार गुणियों द्वारा ठुमरी सिखाई जाने की परंपरा रही है। ठुमरी के विकास में अनेक घरानेदार संगीतज्ञों का योगदान होने पर भी उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक जन समाज में ठुमरी का गान और भावप्रदर्शन मुख्यतः वेश्याओं द्वारा होता रहा तथा घरानेदार संगीतज्ञ उसे नीची नजर से देखते रहे। सोलहवीं शताब्दी में अकबर के समय से मुगल दरबारों में ध्रुपद गान की परंपरा आरंभ हुई और यह परंपरा अठारहवीं शताब्दी के मुगल शासक मुहम्मद शाह 'रँगीला' के समय तक चलती रही। यद्यपि मुहम्मद शाह 'रँगीला' की अभिरुचि और उसके दरबारी संगीतज्ञ नेमत खाँ 'सदारंग' के प्रयत्नों से उस समय ख्याल गान का प्रचार बढ़ रहा था, परंतु श्रेष्ठता और राजकीय सम्मान ध्रुपद को ही प्राप्त था।

कालांतर में जैसे–जैसे ख्याल गान की लोकप्रियता बढ़ती गई वैसे–वैसे ध्रुपद गान प्रचार से हटता गया। इस संबंध में पं0 सुदर्शनाचार्य का कथन है ''इस ख्याल की गवाई ने ध्रुपद और आलाप में अरुचि का बीज बो दिया जो इस समय खूब लहरा रहा है। तदनंतर ठुमरी–टप्पे ने ख्याल से भी अरुचि उत्पन्न कर दी।'' अठारहवीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थांस में अवध के नवाब आसफुद्दौला के समय वहाँ की राजधानी लखनऊ संगीत और कथक नृत्य का गढ़ बन चुकी थी। उस समय से ही धीरे–धीरे वहाँ के लोगों में ठुमरी–गान के प्रति अभिरुचि बढ़ने लगी थी और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में तो ठुमरी का आकर्षण इतना बढ़ गया था कि लखनऊ के रईसों की प्रसन्नता के लिए तत्कालीन सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ गुलाम रजा सितार पर ठुमरियाँ बजाने लगे थे। ठुमरी की लोकप्रियता और उसके प्रभाव के संबंध में उस युग के संगीत ग्रंथकार कैप्टेन विलर्ड ने स्पष्ट कहा है कि ठुमरी की विधा इतनी सजीव और अद्भुत है कि उसे सुनने का आनंद श्रोता कभी नही भूलता। ठुमरी का विषय ही ऐसा है कि उसे शब्दों में वर्णन करना संभव नहीं, उसके गीतों का चित्ताकर्षण प्रभाव, सुनकर ही अनुभव किया जा सकता है। इससे ज्ञात होता है कि वाजिद अली शाह के पूर्व ही ठुमरी के विकास और प्रचार के लिए अनुकूल वातावरण निर्मित होने लगा था। अठारहवीं शताब्दी के अंत और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही ठुमरी और कथक नृत्य के प्रति लखनऊ के लोगों का झुकाव बढ़ रहा था। वाजिद अली शाह के प्रोत्साहन से तो उनके अंतःपुर से लेकर राजदरबार की महफ़िलों तक कथक नृत्य और ठुमरी गान की प्रधानता हो गई थी।

ठुमरी के विकास और प्रचार में सर्वप्रथम जिन व्यक्तियों ने योगदान दिया, उनमें लखनऊ के वाजिद अली शाह, उनके दरबारी गायक क़व्वालबच्चे उस्ताद सादिक अली खाँ और लखनऊ घराने के कथक नर्तक महाराज बिंदादीन प्रमुख थे। उन्नीसवीं शताब्दी में, अवध के बादशाह वाजिदअली को ठुमरी रचना करने और ठुमरी गान को आश्रय देकर प्रोत्साहन व प्रचार द्वारा उसके योग्य

वातावरण बनाने, उस्ताद सादिक अली खाँ को ठुमरी रचना व गान के साथ–साथ उसकी शिक्षा देकर अनेक ठुमरी गायक–गायिकाओं के निर्माण करने और महाराज बिंदादीन को ठुमरी रचना करने व भावाभिनय सहित उसके प्रस्तुतिकरण की कला को विकसित करने का श्रेय रहा है। इसीलिए लोगों की विभिन्न धारणाओं के अनुसार इनमें से प्रत्येक व्यक्ति को भूल से ठुमरी का जन्मदाता या आविष्कर्ता भी माना जाता रहा है। उन्नीसवीं शताब्दी से बीसवीं शताब्दी के मध्य तक लखनऊ में अनेक भाँड गान और नृत्याभिनय में बहुत कुशल हो गए हैं, जिनमें रमजानी, हुसैनबख्श, क़ायमअली, मिर्ज़ा वहीद काश्मीरी, मुहम्मदबख्श (कन्हैया), अज़मत अली तथा राहत अली प्रमुख थे, मुहम्मदबख्श (कन्हैया) के भाई चाँद मियाँ उत्तम ठुमरी–गायक होने के साथ–साथ उच्च कोटि के ठुमरी वाग्गेयकार भी थे। वाजिद अली शाह के समय से ठुमरी के प्रति लखनऊ के लोगों की अभिरुचि वृद्धि के साथ–ही–साथ ठुमरी गाने की कला का वहाँ इतना विकास और प्रचार हुआ। उत्तर भारत में लखनऊ के अतिरिक्त बनारस भी ठुमरी के लिए विशेष रुप से प्रसिद्ध रहा है। यहाँ की ठुमरी गाने की शैली इतनी लोकप्रिय हुई कि कालांतर में उसे 'बनारसी शैली की ठुमरी' या 'बनारसी ठुमरी' कहा जाने लगा।

कालांतर में धीरे–धीरे बनारस की ओर गाई जाने वाली ठुमरी की रचनाओं व शैली पर उत्तर भारत के पूर्वी प्रदेशों की बोलियों, लोकगीतों व लोकधुनों का बहुत प्रभाव पड़ा। अतएव आगे चलकर बनारस में बोलबनाव के ठुमरी–गान के एक ऐसे स्वरुप का विकास हुआ, जिस पर ब्रजभाषा के साथ–साथ अवधी, भोजपुरी व मगही आदि बोलियों और पूर्वी उत्तर प्रदेश व बिहार में प्रचलित चैती, घाटो, कजरी, सावन, झूमर, बिरहा, पुरबी आदि लोक–गीतों और उनकी धुनों का भी बहुत प्रभाव था। बनारस की ठुमरी का यह स्वरुप मुख्यतः गानप्रधान और बोलबनाव का रहा एवं आगे चलकर यही 'बनारसी ठुमरी' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में 'पूरब अंग ठुमरी' की 'लखनवी' और 'बनारसी' दो शाखाएँ हो गई। बाद में जैसे–जैसे 'बनारसी ठुमरी' की लोकप्रियता बढ़ती गई, वैसे–ही–वैसे 'लखनवी ठुमरी' धीरे–धीरे प्रचार से हटती गई।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक लोगों में ठुमरी–गान इतना लोकप्रिय हो चला था कि अनेक घरानेदार व उच्च श्रेणी के प्रतिष्ठित ध्रुपद व ख्याल–गायकों ने भी इसे अपनाया। आजकल भारतीय संगीत में ठुमरी के प्रति लोकाभिरुचि इतनी बढ़ गई है कि प्रायः सभी संगीत सभाओं व संगीत–सम्मेलनों में लोग प्रत्येक गान, वादन व कथक नर्तन कार्यक्रम के अंतिम भाग में ठुमरी के गान, वादन या भावप्रदर्शन की अपेक्षा करते हुए बड़ी उत्सुकता से उसकी प्रतीक्षा करते हैं और ऐसा न होने पर बीच में ही अपने हार्दिक उद्‌गार प्रकट करते हुए, कलाकार से उसके लिए आग्रह भी करते हैं। इतना ही नहीं, अपने माधुर्य व लोकप्रियता के कारण, ठुमरी ने उत्तर भारतीय संगीत की ख्याल, भजन, गज़ल आदि गान–विधाओं व सितार–वादन की वर्तमान शैलियों को भी बहुत कुछ प्रभावित किया है।

4.5.1 ठुमरी के घराने (शैली) – ठुमरी–रचनाओं में मोटे तौर पर प्रायः बोलबाँट अर्थात् पछाहीं ठुमरियों में ब्रजभाषा और कहीं–कहीं उसके साथ किंचित खड़ी बोली व उर्दू का प्रयोग तथा बोलबनाव अर्थात् पूरबअंग की ठुमरियों में ब्रजभाषा के साथ–साथ अवधी व भोजपूरी बोलियों का प्रयोग दिखाई पड़ता है। ठुमरी की बढ़ती हुई लोकप्रियता से प्रभावित होकर बंगाल प्रदेश के कतिपय संगीतज्ञों ने बँगला भाषा में ठुमरी रचना करके उसके बँगलाकरण का प्रयास भी किया। परंतु यह प्रयोग अधिक सफल और प्रचलित न हो सका। फलतः आज भी ठुमरी रचनाओं में हिंदी की ही लोकभाषाओं (जनबोलियों) का वर्चस्व दिखाई पड़ता है।

ठुमरी और ठुमरी–शैली के अन्य गीतों में व्यवहृत होने वाले तालों में त्रिताल, सितारखानी, पंजाबी, जत (षोडशमात्रिक चाँचर), दीपचंदी (चतुर्दश–मात्रिक चाँचर), झपताल, रुपक, एकताल आदि प्रमुख हैं। कभी–कभी आड़ाचौताल में भी कुछ ठुमरी रचनाएँ मिलती हैं परंतु उनकी संख्या बहुत कम है।

ठुमरी गान में प्रयोग किए जाने वाले त्रिताल, सितारखानी, पंजाबी और जत या चाँचर इत्यादि सभी तालें सोलह मात्राओं व चार खण्ड़ों वाले चतुरश्रजातीय देशी ताल हैं, जो कि मूलतः त्रिताल से संबंद्ध और उसके भेद माने जाते हैं। पुराने संगीतज्ञों के अनुसार प्रारंभिक ठुमरी–गान में व्यवहृत होने वाला प्रधान ताल त्रिताल ही था।

गीत के बोलों पर ही मुख्यतः आधारित होने के कारण, ठुमरी की गान–प्रणाली भी विशेषतया 'बोलप्रधान गायकी' के रुप में ही विकसित हुई। अतः ठुमरी की वर्तमान गान–शैलियों के विकास में, ठुमरी के 'बोलों' और स्वरों के साथ उनके बोलविस्तार की प्रमुख भूमिका रही है।

मूलतः नृत्यात्मक गीतविधा होने के कारण, ठुमरी की गीतरचना में निहित 'बोलों' की गत्यात्मकता और भावाभिव्यंजनात्मक गुणों की प्रधानता के आधार पर, कालांतर में, ठुमरी के दो प्रमुख भेद हो गए जिन्हें क्रमशः 'बोलबाँट की ठुमरी' और 'बोलबनाव की ठुमरी' कहा जाता है। 'बोलबाँट की ठुमरी' मुख्यतः गतिप्रधान और 'बोलबनाव की ठुमरी' भावप्रधान है।

बोलबाँट ठुमरियों का प्रसार–क्षेत्र लखनऊ के पश्चिम में स्थित फ़र्रुखाबाद, इटावा, बरेली, रामपुर, मथुरा व दिल्ली इत्यादि स्थानों की ओर अधिक होने के कारण कभी–कभी इन्हें 'पछाहीं ठुमरी' के नाम से भी संबोधित किया जाता है। बोलबाँट की ठुमरियों में प्रायः बंदिश की रचना का चमत्कार सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। अतः इस शैली की ठुमरियों को 'बंदिशी ठुमरी' या 'बंदिश की ठुमरी' भी कहने का प्रचलन है।

बोलबाँट की ठुमरियों में व्यवहृत होने वाली भाषा मुख्यतः ब्रज है। इन ठुमरियों के विषय, प्रधानतः कृष्ण की श्रृंगारात्मक ब्रजलीलाओं से संबद्ध होने पर भी अनेक रचनाओं में साधारण नर–नारी की प्रमाणिकता मिलती है।

1. पूरब अंग – बोलबनाव की ठुमरी का प्रसार विशेष रुप से उत्तर भारत के पूर्वी भाग अर्थात् पूर्वी उत्तर प्रदेश व बिहार की ओर अधिक होने के कारण इसे प्रायः 'पूरब अंग की ठुमरी' या 'पूरबी ठुमरी' कहा जाता है। उत्तर भारत के पूर्वी प्रदेशों से संबद्ध होने के कारण पूरब अंग की बोल बनाव ठुमरियों पर चैती, कजरी, पूरबी, घाटो आदि लोकगीतों की धुनों का भी बहुत प्रभाव है।

पूरब अंग की बोलबनाव ठुमरी गाने का ढंग साधारणतया पूर्वोक्त रुप में होते हुए भी उसकी गायकी में बोलों व स्वरों के 'बढ़त' अर्थात् विस्तार का एक विशेष क्रम होता है, जिसके अनुसार पहले 'बंदिश' की प्रकृति के अनुसार बोलबनाव करते हुए ठुमरी में व्यवहृत होने वाले मुख्य राग की 'बढ़त' की जाती है। फिर अन्य समप्रकृति रागों की छाया दिखाते हुए मुख्य राग का तिरोभाव व आविर्भाव किया जाता है।

पूरब अंग की ठुमरी अपने सुरीलेपन, चैनदारी, बोलबनाव व स्वरों के विशिष्ट लगाव के लिए सुप्रसिद्ध है। बोलबनाव की ठुमरियों के विकास व प्रचार के लिए उत्तर प्रदेश के लखनऊ और बनारस (वाराणसी) नगर बहुत समय से विख्यात हैं, जिनके आधार पर 'पूरब अंग ठुमरी' की गायकी के मुख्यतः दो भेद माने जाते हैं। इन्हें क्रमशः लखनवी शैली और बनारसी शैली कहा जाता है।

(क) लखनवी शैली – लखनऊ और उसके निकटस्थ क्षेत्रों में विशेषतया प्रचलित होने के कारण इसे लखनवी शैली की ठुमरी या लखनवी ठुमरी कहा जाता है। इस शैली की ठुमरी रचनाओं में ब्रजभाषा के साथ–साथ प्रायः लखनऊ व उसके आसपास बोली जाने वाली अवधी बोली का प्रयोग भी मिलता है। लखनऊ व उसके आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों में बोली जाने वाली इस लोकभाषा को उन्नीसवीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध ठुमरीकार नवाब चौलक्खी वज़ीर मिर्ज़ा बाला क़दर उर्फ़ 'कदर पिया' ने 'भाखा' कहा है। इस 'भाखा' का उदाहरण निम्नलिखित ठुमरियों से स्पष्ट होता ळें

ठुमरी पीलू

स्थायी – **मोरी अँखियों ने बैर किया। देखो, मोसे, कदर पिया।।**

अंतरा – **आप लरत और मन का फॅसावत। इन्हीं कारन घायल होत जिया।।**

लखनवी ठुमरियों में 'भाखा' अर्थात् ब्रज और अवधी के मिले–जुले रुप के साथ ही कभी–कभी उर्दू भाषा के शब्दों का भी यथोचित रुप में यत्किचित प्रयोग देखने को मिलता है।

अवध के नवाबी युग में विकसित होने के कारण ठुमरी की इस लखनवी शैली पर तत्कालीन वातावरण का बहुत प्रभाव है। उस युग के सामंती वैभव, विलास व दरबारी अदब कायदे की मिली–जुली संस्कृति से प्रभावित इस लखनवी शैली के ठुमरी गान में नृत्यात्मकता के साथ–साथ नाज़ोनखरे, बनाव, सिंगार और नफ़ासत की प्रधानता दिखाई पड़ती है। इन सब विशेषताओं के फलस्वरुप लखनऊ में बोलबनाव ठुमरी–गान का एक ऐसा विशिष्ट ढंग प्रचलित हुआ, जिसमें कि संगीतपक्ष के कलात्मक कौशल के प्रति अधिक सजग रहते हुए बोलबनाव किया जाता है।

(ख) बनारसी शैली – पूर्वी उत्तर प्रदेश में स्थित बनारस (वाराणसी) नगर और उसके निकटस्थ क्षेत्रों में विशेषतया प्रचलित होने के कारण इसे बनारसी ठुमरी या बनारसी शैली की ठुमरी कहा जाता है। इस शैली की ठुमरी–रचनाओं में ब्रज व अवधी के साथ–साथ पूर्वी क्षेत्रों में बोली जाने वाली भोजपुरी व मगही इत्यादि पूर्वी बोलियों का प्रयोग भी प्रायः दिखाई पड़ता है। इस प्रकार की ठुमरियों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:

ठुमरी भैरवी

स्थायी – **मेरे करमवाँ में याही लिखा हो राजा, कर ले सवतिया से प्रीत।।**

टंतरा – **जहां रहियो राजा, कुसल से रहियो। मोरे सेंदुरवा के भाग हो राजा,**
कर ले सवतिया से प्रीत।

बनारसी ठुमरी पर पूर्वी उत्तर प्रदेश में गाए जाने वाले चैती, कजरी, पुरबी, झूमर आदि लोकगीतों व उनकी धुनों का बहुत प्रभाव है। फलतः बनारसी शैली के ठुमरी–गान में बोलबनाव करते समय बोलों के 'कहन' अर्थात् लहज़े में पूर्वी बोलियों के विशिष्ट उच्चारण की मिठास के साथ–साथ स्वरसन्निवेशों के प्रयोग में पूर्वी लोकधुनों की सादगी व सरलता के दर्शन होते हैं। अतः इस शैली में बोलों का 'बनाव', अर्थात् गीत के बोलों में निहित भावों के अनुकूल स्वरसंदर्भों का प्रयोग बहुत स्वाभाविक व सरल रुप में होता है।

बनारसी शैली के ठुमरी गान में कभी–कभी सजावट के लिए मूल बंदिश के विषयानुकूल रीतिकालीन हिंदी की ब्रज, अवधी इत्यादि बोलियों में रचित दोहा, सोरठा, सवैया, कवित्त आदि रचनाएँ बीच–बीच में कहने का भी प्रचलन है।

(2) पंजाब अंग – वर्तमान उत्तर भारतीय संगीत में बोलबाँट की 'पछाहीं ठुमरी' और बोल–बनाव की 'पूरब अंग की ठुमरी' के अतिरिक्त ठुमरी गाने की एक अन्य शैली भी वर्तमान समय में बड़ी लोकप्रिय हो रही है, जिसे 'पंजाब अंग की ठुमरी' कहा जाता है। 'पंजाब अंग' की शैली आज से लगभग चालीस वर्ष पहले, इसी शताब्दी के चौथे दशक से लोकप्रिय हुई है।

सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ पं0 दिलीपचंद्र वेदी के कथनानुसार ठुमरी की पंजाबी शैली का प्रारंभ आज से लगभग साठ वर्ष पूर्व कसूर के सुप्रसिद्ध गायक स्व0 अलीबख्श खाँ द्वारा हुआ। उन्हें ठुमरी का ज्ञान लखनऊ में स्व0 महाराज बिंदादीन व उनके भाई स्व0 कालिकाप्रसाद तथा स्व0 ठाकुर नवाबअली खाँ के संपर्क से हुआ था। बाद में 'पंजाब अंग' की शैली को प्रतिष्ठित करने वालों में स्व0 अलीबख्श खाँ के पुत्रों अर्थात् पंजाब के सुविख्यात गायक स्वर्गीय बड़े गुलाम अली खाँ तथा उनके छोटे भाई स्वर्गीय बरकत अली खाँ का नाम विशेष रुप से लिया जाता है।

यदि ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया जाय तो बोलबाँट की 'पछाही' और बोलबनाव की 'पूरबी' ठुमरी में गीतरचना व शैली की भिन्नता स्पष्ट रुप से दिखाई पड़ती है। परंतु 'पूरब' और 'पंजाब' इन दोनों अंगों के ठुमरी गान में केवल स्वरों के बर्ताव की भिन्नता के अतिरिक्त अन्य कोई भेद नहीं दिखाई पड़ता। प्रायः यह देखा जाता है कि 'पंजाब अंग' की शैली में ठुमरी गाने वाले लोग हिंदी की ब्रज, अवधी व भोजपुरी आदि बोलियों में विरचित बोलबनाव की ठुमरी तथा दादरा गीतों के गान में पंजाब प्रदेश के हीर, माहिया, टप्पा, मुल्तानी काफी, सिंधी काफी और पहाड़ी इत्यादि लोकगीतों की धुनों के वैचित्यपूर्ण स्वरसंदर्भों का समावेश करते हुए उन्हें अपने विशिष्ट ढंग से गाते हैं। इस दृष्टि से, एक ही ठुमरी को गाते समय, केवल स्वरसन्निवेशों के 'बर्ताव' को बदल देने पर उसमें 'पूरब' या 'पंजाब' अंग दिखाया जा सकता है। अतः दोनों 'अंगों' के भेद का आधार केवल विशिष्ट स्वरसन्निवेशों के प्रयोगों का परिमाण मात्र ही है।

इससे निष्कर्ष निकलता है कि 'पूरब अंग' की ठुमरी में पंजाब के लोकसंगीत के स्वरसंदर्भों का रंग देते हुए उसे वैचित्रयपूर्ण बनाने से ही ठुमरी गान की पंजाबी शैली विकसित हुई है। इस प्रकार से, 'पूरब अंग' की एक शाखा होने पर भी विशेषकर पंजाबी ढंग से गाए जाने के कारण इस शैली के ठुमरी गान के लिए 'पंजाब अंग' शब्द रुढ़ होकर जनसमाज में प्रचलित हो चुका है।

स्वरवैचित्रय, कण, मुर्की, खटका और टप्पाशैली की छोटी छोटी खटकेदार तानों का व्यवहार पंजाब अंग के ठुमरी की विशिष्टता है। टप्पाशैली की तानों में प्रत्येक स्वर के दुहरे या तिहरे रुप को, उस स्वर के पूर्ववर्ती स्वर के कण का खटका देते हुए, प्रयोग किया जाता है।

जैसे– <u>काफी में–</u>   सां   नि
निसां रें रें सां नि ध नि सां सां नि ध
म
प ध नि ध प म ग, म प प म ग, रे ग म म म ग
रे   सा   ध   प
रे सा नि सा; ग ग रे रे म प, नि नि ध ध नि

पंजाब के ठुमरी गायक–गायिकाओं का आकर्षण, बोलबनाव और मान्य रागनियमों के प्रति विशेष न होकर स्वरसमूहों के वैचित्रयपूर्ण प्रयोगों की ओर अधिक रहता है। फलतः पंजाब अंग के ठुमरी गान में प्रायः स्वरों के शुद्ध, कोमल व तीव्रादि रुपों क्रमशः एक के बाद एक का व्यवहार भी स्वतंत्रतापूर्वक किया जाता है।

इस प्रकार अभी तक वर्तमान ठुमरी गान में बोलबाँट या बंदिशी ठुमरी की 'पछाहीं' तथा बोलबनाव ठुमरी की 'पूरब अंग' व 'पंजाब अंग' नामक शैलियाँ प्रचलित हैं। ठुमरी की प्रकृति लोकधुनों के इतनी अनुकूल है कि जिन–जिन प्रदेशों में ठुमरी गान का प्रचार व प्रसार हुआ है, उन प्रदेशों के लोकसंगीत की धुनों और उनकी विशेषताओं का समावेश भी ठुमरी गान में होता गया है।

अभ्यास प्रश्न

---

1. रिक्त स्थान की पूर्तिः–
(क) ठुमरी गायन शैली ....प्रकृति की गायकी है।
(ख) ठुमरी के विकास में विशेष योगदान देने वाले वाज़िद अली शाह .... दरबार के गायक थे।
(ग) बोलबांट ठुमरियों की भाषा मुख्यतः .... भाषा है।
(घ) ठुमरी गायन शैली में मुख्यतः .... ताल का प्रयोग होता है।
2. लघु उत्तरीय प्रश्नः–
(क) बोलबाँट ठुमरियों के विषय में संक्षेप में विवरण दीजिए ?
(ख) बनारसी शैली की ठुमरी की क्या विशेषताएँ हैं ?

(ग) ठुमरी गीत शैली में किन तालों का प्रयोग होता है ?

3. **बहुविकल्पीय प्रश्नः–**

(क) बोलबाँट ठुमरियों का प्रसार क्षेत्र प्रमुख रुप से है ?

(1) बरेली (2) बनारस (3) कानपुर

(ख) ठुमरी गायन शैली के प्रमख अन्वेषक माने जाते हैं।

(1) बंदे अली खां (2) सादिक अली खां (3) मुनव्वर अली खां

(ग) ठुमरी के विषय में सबसे उल्लेख प्राप्त होने वाले ग्रंथ का नाम है।

(1) संगीत मकरंद (2) राग दर्पण (3) संगीत समयसार

(घ) पूरब अंग की ठुमरी में प्रमुख रुप से निम्न प्रान्त के लोक संगीत को स्थान प्राप्त है।

(1) लखनऊ (2) पंजाब (3) भोजपुरी

4.6 सारांश

इस ईकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान चुके हैं कि वर्तमान की प्रमुख गायन शैलियों में ठुमरी गायन शैली का महत्वपूर्ण स्थान है तथा लगभग एक शताब्दी पूर्व ध्रुपद गायन शैली अपने चरम पर थी, वर्तमान में ख्याल गायन एवं ठुमरी गायन ध्रुपद की अपेक्षा अधिक प्रचलित हो चुके हैं। आप यह भी जान चुके हैं कि ध्रुपद गायन एवं ठुमरी गायन शैली में किन मूलभूत तत्वों का समावेश रहता है तथा गायन के स्वरुप की दृष्टि से दोनों की प्रकृति एवं चलन में बहुत अन्तर है। ध्रुपद अपनी गम्भीरता तो ठुमरी अपनी चपलता के लिए प्रसिद्ध है। इस प्रकार ध्रुपद भारतीय संगीत की मध्यकालीन मुख्य शैली रही है तथा प्रबन्ध शैली का परिवर्तित रुप है तथा ठुमरी शैली आधुनिक युग में विशेष रुप से प्रचलन में है एवं अधिकतर प्रत्येक शास्त्रीय संगीत के किसी भी विधा के गायन कार्यक्रम के अंत में ठुमरी गाई जाने लगी है।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.4 :–

2. सत्य असत्य बताइयेः–

(क) ध्रुपद गम्भीर गायन शैली है। **(सत्य)**

(ख) ध्रुपद गान का उद्‌गम प्राचीन ध्रुव प्रबन्ध से माना जाता है। **(सत्य)**

(ग) ध्रुपद गायन छः भागों में बँटा रहता है। **(असत्य)**

(घ) नौहारी बानी में विलम्बित रचनाएँ अधिक होती हैं। **(असत्य)**

3. बहुविकल्पीय प्रश्नः–

(क) ध्रुपद गायन की बानियाँ प्रचलित हैं ?

(1) 2 (2) 4 (3) 5

(ख) ध्रुपद की मूल उत्पत्ति के स्रोत प्रबन्ध गायन की धातु है।

(1) स्थाई (2) उदग्रह (3) अन्तरा

(ग) ध्रुपद गायन के विशेषज्ञों में थे।

(1) सदाक हुसैन (2) राजा मानसिंह तवर (3) ओमकार नाथ

4.5 :–

1. रिक्त स्थान की पूर्तिः–

(क) ठुमरी गायन शैली .....प्रकृति की गायकी है।

(ख) ठुमरी के विकास में विशेष योगदान देने वाले वाज़िद अली शाह ..... दरबार के गायक थे।
(ग) बोलबांट ठुमरियों की भाषा मुख्यतः ..... भाषा है।
(घ) ठुमरी गायन शैली में मुख्यतः ..... ताल का प्रयोग होता है।

3. बहुविकल्पीय प्रश्नः–

(क) उत्तरः बरेली (ख) उत्तरः सादिक अली खां
(ग) उत्तरः राग दर्पण (घ) उत्तरः पंजाब

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पं0 विष्णु नारायण भातखंडे (1966) *हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन,* संगीत कार्यालय हाथरस।
2. शत्रुध्न शुक्ल (1991), *ठुमरी की उत्पत्ति विकास और शैलियाँ,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय,
   दिल्ली विश्वविद्यालय।
3. डॉ0 सौभाग्य वर्धन बृहस्पति, (2004), *संगीत चिन्तन,* अभिषेक पब्लिकेशन, चंडीगढ़।

4.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डा0 रेणु राजन, (2010) *भारतीय शास्त्रीय संगीत के विविध आयाम,* अंकित पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
2. शान्ति गोबर्धन (1989), *संगीत शास्त्र दर्पण भाग–2,* पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

(क) ध्रुपद गायन शैली के स्वरुप में समझाते हुए उसके घरानों के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक समझाइये।
(ख) ठुमरी गायन शैली की उत्पत्ति को समझाते हुए उसके घरानों के विषय में एक निबन्ध लिखिए।